अध्याय–4

राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी और अन्य संसदीय अधिकारी

उपराष्ट्रपति पदेन सभापति

उपराष्ट्रपति के बारे में उपबंध

संविधान के अनुच्छेद 63 में उपबंध है कि भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा। अनुच्छेद 64 के अधीन उसे राज्य सभा का पदेन सभापति बनाया गया है। ''संसद् के अधिकारी'' शीर्षक के अन्तर्गत राज्य सभा का पदेन सभापति होने के कारण उपराष्ट्रपति से संबद्ध उपबंध का पुनः उल्लेख किया गया है।[1]

उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाये जाने के कारण हुई रिक्ति पर, नये राष्ट्रपति के निर्वाचन होने और पद ग्रहण करने तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है।[2] जब राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य किसी कारण से अपना कार्य करने में असमर्थ हो, तब उपराष्ट्रपति तब तक राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है, जब तक कि राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्यों को फिर से न संभाल ले।[3] पूर्ववर्ती स्थिति में जब कोई रिक्ति होती है, तब नये राष्ट्रपति को, रिक्ति होने की तारीख के पश्चात् यथाशीघ्र और प्रत्येक दशा में छह माह बीतने से पहले निर्वाचित करना आवश्यक है।[4] जब नया राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करता है, तब उपराष्ट्रपति अपने पद पर वापस आ जाता है। बाद वाली स्थिति में, जब राष्ट्रपति के पद पर कोई अस्थायी रिक्ति होती है, तब राष्ट्रपति द्वारा अपने कर्त्तव्यों को फिर से संभाले जाने तक उपराष्ट्रपति उसके कृत्यों का निर्वहन करता है।

> राष्ट्रपति डा॰ ज़ाकिर हुसेन की 3 मई, 1969 को मृत्यु होने पर तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री वी॰ वी॰ गिरि को, 19 जुलाई, 1969 तक भारत के कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के लिए शपथ दिलाई गई थी। इसी तरह जब 11 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद की मृत्यु हुई तब उपराष्ट्रपति श्री बी॰ डी॰ जत्ती को 24 जुलाई, 1977 तक भारत के कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के लिए शपथ दिलाई गई।

ऐसा कई बार हुआ है जब उपराष्ट्रपति ने, राष्ट्रपति की अनुपस्थिति या बीमारी के कारण उसके कृत्यों का निर्वहन किया है।

> जब राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्र प्रसाद सोवियत संघ की राजकीय यात्रा पर गये थे तब उपराष्ट्रपति डा॰ एस॰ राधाकृष्णन् ने 20 जून, 1960 से 5 जुलाई, 1960 तक राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन किया था क्योंकि उस समय अगले दो सप्ताहों के दौरान ऐसी महत्त्वपूर्ण राजकीय घटनाएं होने वाली थीं जिनके लिए ''राष्ट्रपति की औपचारिक स्वीकृति'' अपेक्षित थी। एक और अवसर पर राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्र प्रसाद की बीमारी के कारण डा॰ राधाकृष्णन् को 19 दिसम्बर, 1961 तक राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करने के लिए 25 जुलाई, 1961 को शपथ दिलाई गई थी।[5]
>
> उपराष्ट्रपति डा॰ ज़ाकिर हुसेन ने उस समय, जब राष्ट्रपति डा॰ राधाकृष्णन् को फरवरी, 1964 में आंख का ऑपरेशन कराना पड़ा था और पुनः मार्च, 1965 में (5 फरवरी, 1964 से 21 फरवरी, 1964 तक और 16 मार्च, 1965 से 18 अप्रैल, 1965 तक) दो बार राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन किया था।

उपराष्ट्रपति श्री एम॰ हिदायतुल्लाह ने राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह के 6 अक्तूबर, 1982 से 31 अक्तूबर, 1982 तक विदेश में चिकित्सीय उपचार के दौरान उनके कृत्यों का निर्वहन किया था।

तथापि, यह दृष्टव्य है कि इन दोनों ही आकस्मिकताओं में, अर्थात् राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति कहा जाता है।

राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति ने 10 फरवरी, 1964 को एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष राष्ट्रपति का अभिभाषण दिया था और तद्नुसार 12 फरवरी, 1964 को अभिभाषण के संबंध में धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति ने 28 मार्च, 1977 को राष्ट्रपति का अभिभाषण दिया था और तद्नुसार 4 अप्रैल, 1977 को उसकी बाबत धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था।

राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति डा॰ ज़ाकिर हुसेन ने 2 अप्रैल, 1965 को राज्य सभा के 51वें सत्र का अवसान किया था।

राज्य सभा के 52वें सत्र के लिए आह्वान आदेश पर राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन कर रहे उपराष्ट्रपति के रूप में डा॰ ज़ाकिर हुसेन द्वारा 4 अप्रैल, 1965 को हस्ताक्षर किये गये थे।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति श्री वी॰ वी॰ गिरि द्वारा 21 मई, 1969 को राज्य सभा के 68वें सत्र का अवसान किया गया था।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति श्री बी॰डी॰ जत्ती द्वारा 22 फरवरी, 1977 को राज्य सभा के 99वें सत्र के लिए आह्वान आदेश पर हस्ताक्षर किए गये थे।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति (श्री बी॰डी॰ जत्ती) ने राज्य सभा में अल्पकालीन सभापति की नियुक्ति का आदेश 24 मार्च, 1977 को दिया था।[6]

राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति (श्री एम॰ हिदायतुल्लाह) ने कुछ विधेयकों की बाबत संविधान के अनुच्छेद 117(3) के अधीन राज्य सभा के लिए सिफारिशें भेजी थीं।[7]

जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है तब उसके पास राष्ट्रपति की सभी शक्तियां और उन्मुक्तियां होती हैं और वह उन उपलब्धियों का हकदार होता है जिनका राष्ट्रपति हकदार है,[8] तथापि, इस अवधि के दौरान वह राज्य सभा के सभापति के पद के कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता है।[9]

उपराष्ट्रपति, संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किया जाता है और ऐसे निर्वाचन में मतदान गुप्त होता है।[10]

1961 से पहले उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में किया जाना अपेक्षित था किन्तु 1952 और 1957 में जब डा॰ एस॰ राधाकृष्णन् को निर्विरोध निर्वाचित किया गया था तब ऐसी कोई बैठक नहीं हुई थी।

संविधान (ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 1961 द्वारा संयुक्त बैठक की आवश्यकता समाप्त कर दी गई थी क्योंकि इस प्रकार की आवश्यकता ''पूर्णत: अनावश्यक प्रतीत होती थी और इससे व्यावहारिक कठिनाइयां भी उत्पन्न होने की संभावना थी।''[11]

उपराष्ट्रपति संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं हो सकता है और यदि कोई ऐसा सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तो यह समझा जायेगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान उपराष्ट्रपति के रूप में अपने पद-ग्रहण की तारीख से रिक्त कर दिया है।[12] कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह भारत का नागरिक हो, पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो।[13] ऐसे व्यक्ति को भारत सरकार के या राज्य सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण के अधीन कोई लाभ का पद

धारण नहीं करना चाहिए।[14] इस प्रयोजनार्थ राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल, संघ या किसी राज्य के मंत्री के पद लाभ के पद नहीं हैं।[15]

राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 और उसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों में उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन संबंधी विस्तृत उपबन्धों को समाविष्ट किया गया है। स्थापित प्रथा के अनुसार उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए राज्य सभा अथवा लोक सभा के महासचिव को रिटर्निंग ऑफ़िसर के रूप में नियुक्त किया जाता है।

> पहले, दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दसवें और बारहवें निर्वाचनों के लिए लोक सभा के सचिव/महासचिव को और तीसरे, पांचवें, सातवें और नौवें निर्वाचनों के लिए राज्य सभा के सचिव/महासचिव को रिटर्निंग ऑफ़िसर के रूप में नियुक्त किया गया था। तथापि, ग्यारहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के दौरान, संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किया गया था, जोकि राज्य सभा या लोक सभा के महासचिव को रिटर्निंग ऑफिसर के रूप में नियुक्त करने की स्थापित प्रथा से विचलन था।

निर्वाचन आयोग द्वारा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की विभिन्न अवस्थाओं को राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है। ये अवस्थाएं हैं:–नामनिर्देशन करने की अंतिम तारीख, जो अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के पश्चात् चौदहवें दिन की तारीख होती है; नामनिर्देशन की संवीक्षा (छानबीन) की तारीख, जो नामनिर्देशन करने की तारीख के ठीक बाद के दिन की तारीख होती है; अभ्यर्थिता वापस लेने की अन्तिम तारीख, जो नामनिर्देशनों की संवीक्षा की तारीख के पश्चात् दूसरे दिन की तारीख होती है और मतदान की तारीख, यदि आवश्यक हो तो, जो अभ्यर्थिता वापस लेने की अंतिम तारीख के पश्चात् पन्द्रहवें दिन से पहले की तारीख नहीं होती है। यदि निर्धारित किया गया कोई भी दिन लोक–अवकाश का दिन है, तो उसके ठीक अगले दिन, जो लोक–अवकाश का दिन न हो, की तारीख को इस प्रयोजनार्थ उपयुक्त होना माना जाता है।[16]

उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से हुई रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन की अधिसूचना पदमुक्त होने वाले उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से पूर्व के साठवें दिन को या उसके पश्चात् सुविधापूर्वक जितनी शीघ्र निकाली जा सके, निकाली जाती है और तारीखें ऐसे नियत की जाती हैं कि निर्वाचन ऐसे समय में पूरा हो जाये कि तद्द्वारा नव–निर्वाचित उपराष्ट्रपति अपना पद–ग्रहण पद–मुक्त होने वाले उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान के अगले दिन को कर सके।[17] अन्य किसी भी मामले में अधिसूचना ऐसी रिक्ति के होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र निकाली जानी होती है।[18]

1974 तक उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए नामनिर्देशन–पत्र के लिए प्रस्थापक (प्रस्तावक) के रूप में एक निर्वाचक और समर्थक के रूप में केवल एक निर्वाचक ही आवश्यक होता था और 'निक्षेप–राशि' जमा कराने की कोई आवश्यकता नहीं होती थी। राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 में यह उपबन्ध करने के लिए संशोधन किया गया है कि नामनिर्देशन–पत्र पर कम से कम बीस निर्वाचकों के प्रस्थापक के रूप में और कम से कम बीस निर्वाचकों के समर्थक के रूप में हस्ताक्षर होने चाहिए।[19] यह भी उपबन्ध किया गया है कि अभ्यर्थी को सम्यक्त: नामनिर्दिष्ट अभ्यर्थी के रूप में विचार किये जाने के लिए 15,000 रुपये की राशि निक्षिप्त करनी होगी। जहां किसी अभ्यर्थी को एक से अधिक नामनिर्देशन पत्रों द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाए, वहां उसे एक बार ही नियत राशि निक्षिप्त करानी होगी।[20]

यह भी उपबंध किया गया है कि कोई निर्वाचक उसी निर्वाचन में चाहे प्रस्थापक के रूप में या समर्थक

के रूप में, एक से अधिक नामनिर्देशन-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा और यदि वह करता है, तो प्रथम परिदत्त नामनिर्देशन-पत्र से भिन्न किसी भी नामनिर्देशन-पत्र पर उसका हस्ताक्षर निष्प्रभावी होगा। इसके अलावा किसी अभ्यर्थी द्वारा या उसकी ओर से चार से अधिक नामनिर्देशन-पत्र प्रस्तुत नहीं किये जायेंगे या रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा स्वीकार नहीं किये जायेंगे।[21]

उपराष्ट्रपति अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता है परन्तु वह राष्ट्रपति को सम्बोधित अपने स्वहस्ताक्षरित-पत्र द्वारा अपना पद त्याग कर सकता है; उसे राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा, जिससे लोक सभा सहमत हो, पद से भी हटाया जा सकता है। संकल्प को प्रस्तावित करने के आशय की कम से कम चौदह दिन की सूचना देना आवश्यक है। उपराष्ट्रपति, अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने पर भी तब तक पद धारण करता रहता है जब तक उसका उत्तराधिकारी अपना पद-ग्रहण नहीं कर लेता है।[22]

प्रत्येक उपराष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष निम्नलिखित प्ररूप में शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है:

> ''मैं, अमुक, ईश्वर की शपथ लेता हूं/मैं सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।''

अब तक सम्पन्न हुए विभिन्न उपराष्ट्रपति निर्वाचनों का ब्यौरा निम्नलिखित है:

क्र॰सं॰	निर्वाचित उपराष्ट्रपति का नाम	प्रतिद्वंद्वियों की संख्या	निर्वाचन की तिथि	कार्यकाल
1	2	3	4	5
1.	डा॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	निर्विरोध	25.4.1952	13.5.1952–12.5.1957
2.	डा॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	निर्विरोध	23.4.1957	13.5.1957–12.5.1962
3.	डा॰ ज़ाकिर हुसेन	दो	7.5.1962	13.5.1962–12.5.1967
4.	श्री वी॰ वी॰ गिरि	दो	6.5.1967	13.5.1967–3.5.1969
5.	श्री जी॰ एस॰ पाठक	दो	30.8.1969	31.8.1969–30.8.1974
6.	श्री बी॰ डी॰ जत्ती	दो	27.8.1974	31.8.1974–30.8.1979
7.	श्री एम॰ हिदायतुल्लाह	निर्विरोध	9.8.1979	31.8.1979–30.8.1984
8.	श्री आर॰ वेंकटरामन्	दो	22.8.1984	31.8.1984–24.7.1987
9.	डा॰ शंकर दयाल शर्मा	निर्विरोध	21.8.1987	3.9.1987–24.7.1992
10.	श्री के॰ आर॰ नारायणन	दो	19.8.1992	21.8.1992–24.7.1997
11.	श्री कृष्ण कांत	दो	16.8.1997	21.8.1997–27.7.2002*
12.	श्री भैरों सिंह शेखावत	दो	12.8.2002	19.8.2002– —

*कार्यकाल में मृत्यु

उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जायेगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा।[23] यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को निष्प्रभावित घोषित कर दिया जाता है तो उसके द्वारा अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्त्तव्यों के पालन में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की तारीख को या उससे पहले किये गये कार्य उस घोषणा के कारण अविधिमान्य नहीं होंगे।[24]

उपराष्ट्रपति निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी ऐसे निर्वाचन के किसी अभ्यर्थी द्वारा या दस या अधिक निर्वाचकों द्वारा संयुक्त अर्जीदारों के रूप में, उस घोषणा के, जिसमें निर्वाचन में निर्वाचित अभ्यर्थी का नाम हो, प्रकाशन की तारीख के पश्चात् किसी भी समय उच्चतम न्यायालय में पेश की जा सकती है किन्तु ऐसे प्रकाशन की तारीख से तीस दिनों के पश्चात् पेश नहीं की जा सकती।[25] निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के निम्नलिखित आधार हैं:

(क) निर्वाचित अभ्यर्थी या निर्वाचित अभ्यर्थी की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा निर्वाचन में रिश्वत या असम्यक् असर का अपराध किया जाना;

(ख) निर्वाचन के परिणाम पर—

(1) किसी मत के अनुचित तौर पर लिये जाने या इन्कार किये जाने के कारण से; अथवा

(2) संविधान के या राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 या इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों या किये आदेशों के उपबंधों का अनुपालन न किये जाने से; अथवा

(3) इस तथ्य के कारण कि किसी ऐसे अभ्यर्थी के (निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न) नामनिर्देशन को जिसने अपनी अभ्यर्थिता वापस नहीं ली है, गलत रूप से स्वीकार किये जाने से; अथवा

(ग) किसी अभ्यर्थी के नामनिर्देशन को गलत रूप से इंकार किये जाने से या निर्वाचित अभ्यर्थी के नामनिर्देशन को गलत रूप से स्वीकार किये जाने से तात्विक रूप से प्रभाव पड़ा हो।[26]

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में किसी व्यक्ति के निर्वाचन को उसे निर्वाचित करने वाले निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों में किसी भी कारण से विद्यमान किसी रिक्ति के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।[27]

यदि कोई व्यक्ति, जिसने निर्वाचन अर्जी पेश की है, निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को प्रश्नगत करने के अतिरिक्त इस घोषणा के लिए दावा करता है कि वह स्वयं या कोई अन्य अभ्यर्थी सम्यक् रूप से निर्वाचित हुआ है और उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि वास्तव में अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी ने विधिमान्य मतों में से बहुसंख्यक मत प्राप्त किये हैं तो उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन शून्य घोषित करने के पश्चात् अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित करेगा। लेकिन यदि यह साबित हो जाता है कि ऐसे अभ्यर्थी का निर्वाचन उस दशा में शून्य होता जिसमें वह निर्वाचित अभ्यर्थी रहता और उसके निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी पेश की गई होती, तो ऐसे अर्जीदार या अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित नहीं किया जाना चाहिए।[28]

उपराष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति के नाते कोई वेतन प्राप्त नहीं करता है।[29] वह राज्य सभा के सभापति के रूप में वेतन प्राप्त करता है। उसका वेतन और भत्ते संसद् अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 और इसके अधीन बनाये गये नियमों द्वारा विनियमित होते हैं। अधिनियम के अन्तर्गत सभापति को प्रतिमाह

40,000/- रुपये वेतन प्राप्त होता है। उसे नि:शुल्क सुसज्जित आवास उपलब्ध कराया जाता है और वह स्वयं एवं अपने परिवार के लिए नि:शुल्क चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने का हकदार होता है। इसके अतिरिक्त, राजकीय यात्रा के दौरान उसे उतने यात्रा एवं दैनिक भत्ते प्राप्त होते हैं जो नियमों के तहत कैबिनेट मंत्री को ग्राह्य हैं। उपराष्ट्रपति को सभापति की हैसियत से देय वेतन और भत्ते भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं।[30] उपराष्ट्रपति को उपराष्ट्रपति के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए सहायतार्थ सचिवालय भी उपलब्ध कराया जाता है।

सभापति के रूप में शक्तियां और कर्त्तव्य

पीठासीन अधिकारी के रूप में, राज्य सभा का सभापति सभा की प्रतिष्ठा और सम्मान का निर्विवाद संरक्षक होता है। उसका निष्पक्ष और उचित निर्णय उसके पद की प्रतिष्ठा और गरिमा को बढ़ाता है।

> 20 अप्रैल, 1987 को कतिपय रक्षा-सौदों में कमीशन एजेन्टों की संलिप्तता की जांच करने के सरकार के निर्णय के संबंध में अल्पकालिक चर्चा के आरम्भ होने से पूर्व सभापति ने यह घोषणा की: ''15 जनवरी, 1982 से मध्य जून, 1984 तक मैं रक्षा मंत्री था। अत: मेरे विचार में इस पर बहस के दौरान मेरा सभापीठ पर आसीन रहना उपयुक्त नहीं होगा।'' अत: वे अपने आसन से उठकर चले गए और उपसभापति द्वारा कार्यवाही का संचालन किया गया।[31]

सभापति सभा का प्रमुख प्रवक्ता भी होता है और बाहर इसकी सामूहिक सम्मति की अभिव्यक्ति करता है।

राष्ट्रपति से सभा को संवाद सभापति को किए जाते हैं।[32] जब सभापति को राष्ट्रपति से कोई संदेश प्राप्त होता है चाहे वह संसद् में लंबित किसी विधेयक के सम्बन्ध में हो या अन्यथा हो, तो वह उसे सभा को पढ़कर सुनाता है और संदेश में निर्दिष्ट विषयों पर विचार करने के लिए अनुकरणीय प्रक्रिया के संबंध में आवश्यक निदेश देता है और ऐसे निदेश देने में सभापति को उस सीमा तक नियमों को निलम्बित या परिवर्तित करने की शक्ति प्राप्त होती है जिस सीमा तक कि आवश्यकता हो।[33] इसी प्रकार, राष्ट्रपति को संवाद सभा में प्रस्ताव उपस्थित किये जाने और उसके स्वीकृत हो जाने के बाद औपचारिक समावेदन द्वारा सभापति की मार्फत किया जाता है।[34] उदाहरणार्थ संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में दिये गये राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव की संसूचना, सभा द्वारा उसे स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति को सभापति द्वारा दी जाती है।

बाहर के व्यक्तियों के लिए सभा के प्रतिनिधि के रूप में, सभापति सभा के निर्णयों की सम्बद्ध प्राधिकारियों को संसूचना देता है और उनसे यह अपेक्षा रखता है कि ऐसे निर्णयों का पालन किया जायेगा। इसी तरह, वह सभापति के रूप में उसे लिखे गए ऐसे दस्तावेजों और पत्रों के बारे में, जो उदाहरणार्थ सदन और उसके सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों के बारे में हो सकते हैं, सदन को सूचना देता है।

> 21 अप्रैल, 1964 को सभापति ने उत्तर प्रदेश विधान सभा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मध्य विवाद के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत विशेष निर्देश (1964 का संख्यांक 1) के मामले में उच्चतम न्यायालय से प्राप्त हुई सूचना के बारे में सभा को सूचित किया।[35]
>
> पुन: 9 मई, 1974 को सभापति ने राष्ट्रपतीय निर्वाचन से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत विशेष निर्देश (1974 का संख्यांक 1) के मामले में उच्चतम न्यायालय से प्राप्त हुई सूचना के बारे में सभा को सूचित किया। सभा इससे सहमत थी कि उक्त सूचना के संबंध में सभापति द्वारा कोई कार्यवाही किया जाना आवश्यक नहीं है।[36]

6 नवम्बर, 1987 को सभापति ने संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की वैधता को चुनौती देने वाले दो संसद् सदस्यों द्वारा दायर की गई रिट याचिका के दिल्ली उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में अन्तरणार्थ भारत के संघ की अन्तरण याचिका के मामले में उच्चतम न्यायालय से प्राप्त सूचना के बारे में सभा को सूचित किया।[37]

सभापति विदेशों और विधान-मंडलों से प्राप्त हुए संदेशों की भी सूचना देता है।

सभापति ने संविधान के अन्तर्गत राज्य सभा के विधिवत् गठन पर स्वीडन, नॉर्वे और डेनमार्क की संसदों से प्राप्त हुए शुभकामना संदेशों को पढ़कर सुनाया।[38]

वह आवश्यक होने पर सभा के आदेशों के क्रियान्वयन के लिए वारंट भी जारी करता है।

सभा द्वारा 21 दिसम्बर, 1967 को स्वीकृत किये गये एक संकल्प के अनुसरण में, जिसमें एक व्यक्ति को ''दर्शक-दीर्घा'' से सभा में पर्चे फेंकने के लिए सत्र की समाप्ति तक 'सादा कारावास' का दंड दिया गया था, सभापति ने तिहाड़ कारागृह, दिल्ली के अधीक्षक को सम्बधित सुपुर्दगी वारंट जारी किया था। [39]

18 मार्च, 1982 को सभा द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसरण में, जिसमें ''दर्शक-दीर्घा'' से नारे लगाने के लिए चौदह व्यक्तियों को 24 मार्च, 1982 तक 'सादा कारावास' का दण्ड दिया गया था, सभापति ने तिहाड़ कारागृह, दिल्ली के अधीक्षक को सम्बोधित किए गए सम्बद्ध अपराधियों के पृथक्-पृथक् चौदह सुपुर्दगी वारंट जारी किये थे।[40]

तथापि, एक दर्शक द्वारा ''दर्शक- दीर्घा'' से नारे लगाने और सभा में चप्पल फेंके जाने के एक मामले में जिसे सभा ने एक संकल्प द्वारा सत्र की समाप्ति तक 'सादा कारावास' का दण्ड दिया था, सुपुर्दगी वारंट उपसभापति के हस्ताक्षर से जारी किया गया था, जोकि संकल्प स्वीकृत होने के समय पीठासीन थे।[41]

संविधान के अन्तर्गत सभापति मत बराबर होने की दशा में निर्णायक मत का ही प्रयोग करता है।[42] तथापि, यदि सभा की किसी बैठक में सभापति को उसके पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन है, तब वह उस बैठक में पीठासीन नहीं होगा।[43] वह ऐसे संकल्प पर या ऐसी कार्यवाहियों के दौरान किसी अन्य विषय पर भी बिल्कुल मत नहीं दे सकता।[44] संविधान में भी सभापति की कतिपय शक्तियों और कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है: उसे गणपूर्ति के अभाव में सभा को स्थगित करने या इसके अधिवेशन को निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त है।[45] किसी सदस्य द्वारा सभा से त्याग-पत्र दे दिये जाने की स्थिति में, यदि प्राप्त जानकारी से या अन्यथा, और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, सभापति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा त्याग-पत्र स्वैच्छिक या असली नहीं है, तो उससे उस त्याग-पत्र को स्वीकार नहीं करने की अपेक्षा की जाती है।[46] संविधान की दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत सभापति दल-परिवर्तन के आधार पर राज्य सभा के किसी सदस्य की निरर्हता के प्रश्न का विनिश्चय करता है।[47] वह इस अनुसूची के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम भी बनाता है।[48] उसे यह निदेश देने की शक्ति प्राप्त है कि उक्त नियमों के जानबूझकर किये गये किसी उल्लंघन के बारे में उसी रीति से कार्यवाही की जाये जिस रीति से सदन के विशेषाधिकार भंग के बारे में की जाती है;[49] और सभापति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकता है।[50]

जब एक सदस्य ने यह अनुरोध किया कि उसे अपनी मातृभाषा मलयालम में बोलने की अनुमति प्रदान की जाये, क्योंकि वह अंग्रेजी या हिन्दी में प्रभावी ढंग से बोल पाने में असमर्थ है, तो सभापीठ ने निम्नलिखित व्यवस्था दी:

यह भद्र पुरुष कह रहे हैं कि इन्हें हिन्दी या अंग्रेजी कोई भी राजभाषा नहीं आती। अत: वह अपनी मातृभाषा मलयालम में बोलना चाहते हैं। सभापीठ को इसकी अनुमति देने का अधिकार है बशर्ते कि हमें इसका अनुवाद सुलभ हो। हमें इस प्रकार की असामान्य स्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा और हमारे संविधान में ऐसी स्थितियों को ध्यान में रखा गया है।[51]

तथापि, एक अवसर पर एक सदस्य ने मैथिली में बोलना आरम्भ कर दिया। इस पर आपत्ति किये जाने पर उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि कोई सदस्य हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं में ही बोल सकता है।[52]

सभा में दिये गये भाषणों के साथ-साथ भाषान्तरण की व्यवस्था कर दिये जाने के पश्चात् अब कोई सदस्य एक घंटे पूर्व इस आशय की सूचना देकर संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित किसी भी भाषा में बोल सकता है।[53]

सभापति पीठासीन अधिकारी के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के अतिरिक्त सभा में होने वाले विचार-विमर्श में भाग नहीं लेता। तथापि, किसी व्यवस्था के प्रश्न पर या स्वेच्छा से वह किसी विषय पर चल रहे विचार-विमर्श में सदस्यों की सहायता करने की दृष्टि से किसी भी समय सभा को सम्बोधित कर सकता है।

19 मई, 1952 को जब सभा में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा आरम्भ होने वाली थी, तब सभापति ने उक्त प्रस्ताव पर संशोधनों के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के बारे में टिप्पणी की।[54]

एक अन्य अवसर पर सभापति ने लोक सभा द्वारा यथापारित संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 पर खंडश: विचार करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया की घोषणा की।[55]

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अन्तर्गत सभा की कार्यवाहियों, समितियों और प्रश्नों, ध्यानाकर्षणों, संकल्पों, विधेयकों में संशोधनों, विधेयकों के अधिप्रमाणन, याचिकाओं, सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों, वैयक्तिक स्पष्टीकरणों इत्यादि जैसे अन्य मामलों के संबंध में सभापति को विभिन्न शक्तियां प्रदान की गई हैं। सभापति स्वयं भी, यदि वह उचित समझे, स्थगन के दिन या समय के पूर्व अथवा सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिये जाने के पश्चात् लेकिन उस स्थिति में जब राष्ट्रपति द्वारा सत्रावसान न किया गया हो, कभी भी सभा का अधिवेशन बुला सकता है।[56] सभा में विशेषाधिकार उल्लंघन का प्रश्न उठाने के लिए सभापति की सहमति आवश्यक होती है। वह स्वयमेव ऐसे किसी प्रश्न की जांच, छानबीन या उस पर प्रतिवेदन के लिए विशेषाधिकार समिति को भी सौंप सकता है।[57]

संसदीय समितियां, चाहे उनका गठन सभापति द्वारा किया गया हो या सभा द्वारा, उसके मार्ग-निर्देशों के अनुसार कार्य करती है। वह उनके अध्यक्षों की नियुक्ति करता है और उन्हें ऐसे निदेश जारी करता है, जो प्रक्रिया और कार्य के संबंध में आवश्यक हों। वह विभिन्न स्थायी समितियों और विभाग-संबंधित संसदीय समितियों में सदस्यों का नामनिर्देशन करता है। वह कार्य मंत्रणा समिति,[58] नियम समिति[59] और सामान्य प्रयोजन समिति का स्वयं अध्यक्ष होता है।

सभा में या इससे संबंधित मामलों में संविधान और नियमों की व्याख्या करना सभापति का अधिकार है और ऐसी व्याख्या के संबंध में कोई भी व्यक्ति सभापति से किसी प्रकार का कोई तर्क या विवाद नहीं कर सकता है। सभापति द्वारा दी गई व्यवस्थाएं पूर्वोदाहरण होती हैं जिन्हें मानना आवश्यक है। सभापति द्वारा दी गई व्यवस्थाओं पर आपत्ति अथवा उनकी आलोचना नहीं की जा सकती और सभापति द्वारा दी गई व्यवस्था का विरोध करना सभा और सभापति का अवमान होता है। सभापति के लिए अपने निर्णयों के लिए कारण बताना आवश्यक नहीं है। सभापति द्वारा व्यवस्थाएं सामान्यत: सभा में दी जाती हैं लेकिन किसी आकस्मिकता में उसके अनुरोध पर उसकी व्यवस्था को उपसभापति द्वारा सभा में पढ़कर सुनाया जा सकता है।

महाराष्ट्र न्यासों के मामले में सदस्यों द्वारा वित्त मंत्री और एक दैनिक के सम्पादक के विरुद्ध विशेषाधिकार उल्लंघन की कतिपय सूचनाएं दी गई थीं। सभापति की व्यवस्था को सभा में उनकी ओर से उपसभापति द्वारा पढ़कर सुनाया गया था। व्यवस्था को पढ़कर सुनाते समय उपसभापति ने इस विषय में सभापति द्वारा उन्हें सम्बोधित किये गये पत्र को भी पढ़कर सुनाया।[60]

सभा में व्यवस्था बनाये रखना सभापति का प्राथमिक कर्त्तव्य है और उसे इस प्रयोजनार्थ जैसे—किसी सदस्य के भाषण में असंगत बातों और पुनरुक्ति को रोकने,[61] किसी सदस्य द्वारा अनावश्यक या मानहानिकारक टिप्पणी करने पर उससे उक्त टिप्पणी को वापस लेने का निदेश देने के लिए नियमों के अन्तर्गत सभी आवश्यक अनुशासनात्मक शक्तियां प्रदान की गई हैं। सभापति वाद-विवाद में प्रयुक्त[62] किन्हीं असंसदीय या गरिमारहित शब्दों को निकाल देने का आदेश भी दे सकता है या यह आदेश दे सकता है कि किसी सदस्य द्वारा उनकी अनुमति के बिना कही गई किसी बात को अभिलिखित नहीं किया जायेगा। वह अमर्यादित व्यवहार के दोषी किसी भी सदस्य को सभा से चले जाने का निदेश दे सकता है[63] और यदि कोई सदस्य सभापीठ के प्राधिकार की उपेक्षा करता है और सभा के कार्य में बाधा डालता है तो वह निलंबन के लिए उसका नाम ले सकता है।[64] वह सभा में घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने की दशा में सभा को स्थगित कर सकता है या किसी बैठक को निलम्बित भी कर सकता है।[65]

संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा की वर्षगांठ, शहीद दिवस, भारत छोड़ो दिवस, हिरोशिमा और नागासाकी पर बम गिराये जाने की वर्षगांठ आदि जैसे गंभीर अवसरों पर सभापति द्वारा समुचित उल्लेख करना एक परिपाटी बन गई है। इसी तरह से, सभापति अतिमहत्वपूर्ण घटनाओं या किसी त्रासदी या सुखद घटना पर सभा की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के मामलों पर सभा में प्रस्ताव या संकल्प रख सकता है। ऐसे प्रस्तावों या संकल्पों को बिना किसी चर्चा के सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है। राज्य सभा में स्थापित प्रथा के अनुसार सभापति ही सभा की ओर से दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है, हालांकि कुछ मामलों में अपवादस्वरूप राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेता भी सभापति द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं से स्वयं को सहबद्ध कर सकते हैं। सभापति राज्य सभा में अपना कार्यकाल पूरा कर लेने वाले सदस्यों के पद से निवृत्ति के समय विदाई-भाषण देता है और नव-निर्वाचित सदस्यों का स्वागत करता है। जब कभी भी विशिष्ट विदेशी अतिथि या विदेशी संसदीय शिष्टमंडलों के सदस्य सभा की कार्यवाही देखने के लिए ''विशेष प्रकोष्ठ'' में उपस्थित होते हैं, तब सभापति सभा की ओर से देश में उनका स्वागत करता है।[66]

सभापति को विधेयक में स्पष्ट अशुद्धियों को ठीक करने और ऐसे अन्य परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है जो सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों के परिणामस्वरूप किए जाने हों।[67] जब कोई विधेयक संसद् के सदनों द्वारा पारित किया जाये और वह राज्य सभा के पास हो, तो सभापति उक्त विधेयक को सहमति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व उसे अपने हस्ताक्षर से अधिप्रमाणित करता है।[68]

ऐसे सब विषय जिनका इन नियमों में विशिष्ट रूप से उपबंध न किया गया हो और इन नियमों के विस्तृत प्रवर्तन से संबंधित सब प्रश्न ऐसी नीति से विनियमित किये जाते हैं जिसका कि सभापति समय-समय पर निदेश दे।[69]

राज्य सभा सचिवालय सभापति के नियंत्रण और निदेश में कार्य करता है।[70] 'प्रेस दीर्घा' सहित विभिन्न दीर्घाओं में प्रवेश सभापति के निदेश के अन्तर्गत विनियमित होता है। सदस्यों के अधिकारों की रक्षा के लिए और उनके लिए सभी उचित सुविधाएं सुनिश्चित करने के लिए सभापति उत्तरदायी होता है। यदि किसी सदस्य को गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है तो सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा सभापति को अविलम्ब इस तथ्य की सूचना देनी होती है।[71] सदस्य की रिहाई की सूचना भी सभापति को दी जानी होती है।[72] सभापति की

अनुमति प्राप्त किये बिना, चाहे सभा का अधिवेशन चल रहा हो अथवा नहीं, सभा के परिसर में किसी भी सदस्य को न तो गिरफ्तार ही किया जा सकता है और न ही उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही—सिविल या आपराधिक—आरम्भ की जा सकती है।

कुछ कानून भी सभापति के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हैं। उदाहरणार्थ, संसद्-सदस्य वेतन, भत्ते और पेंशन अधिनियम, 1954 के अन्तर्गत बनाये गये नियम तब तक प्रभावी नहीं होते जब तक कि सभापति और अध्यक्ष द्वारा उनका अनुमोदन और संपुष्टि नहीं कर दी जाती है।[73] न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अन्तर्गत सभापति को उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए प्रस्ताव प्राप्त होने पर किसी न्यायाधीश को हटाये जाने के अनुरोध के कारणों की जांच करने के लिए समिति गठित करनी होती है।[74] उस अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों का भी सभापति और अध्यक्ष द्वारा अनुमोदन और उनकी संपुष्टि किया जाना आवश्यक होता है।[75] प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978 के अन्तर्गत सभापति प्रेस परिषद् के अध्यक्ष का नामनिर्देशन करने वाली समिति का सदस्य होता है।[76]

सभापति संबंधित कानूनों के अन्तर्गत गठित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, पांडिचेरी विश्वविद्यालय और हैदराबाद विश्वविद्यालय की कोर्ट, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय की अंजुमन, हज समिति, भारतीय प्रेस परिषद्, विश्व भारती की संसद्, राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् आदि जैसे विभिन्न निकायों में राज्य सभा के सदस्यों का नामनिर्देशन करता है। सभापति भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की सामान्य सभा, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के सामान्य निकाय, नियोजन और वास्तुकला विद्यालय की सामान्य परिषद्, हिन्दी शिक्षा समिति, संवैधानिक और संसदीय अध्ययन संस्थान आदि जैसे अन्य निकायों में भी राज्य सभा के सदस्यों का नामनिर्देशन करता है।[77]

सभापति, यदि सभा में सर्वसम्मति हो, सभा में उठाये गये किसी मामले की भी जांच कर सकता है या उसके संबंध में सभा की कोई समिति भी नियुक्त कर सकता है।

> 10 अगस्त, 1978 को सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सरकार से यह संस्तुति की गई थी कि वह प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में सभापति द्वारा नियुक्त की जाने वाली समिति से मार्ग-दर्शन और परामर्श प्राप्त करे या दो जांच आयोगों की नियुक्ति करे। 17 अगस्त, 1978 को की गई एक घोषणा में सभापति ने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की कि उनके द्वारा किसी समिति की नियुक्ति किया जाना इस बात पर निर्भर करेगा कि सरकार को उक्त प्रस्ताव में उल्लिखित दो विकल्पों में से कौन-सा विकल्प स्वीकार्य है। प्रधान मंत्री ने 24 अगस्त, 1978 को यह घोषणा की कि सरकार को दोनों में से कोई भी विकल्प स्वीकार्य नहीं है। इसलिए 29 अगस्त, 1978 को सभापति ने प्रधान मंत्री के वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए यह घोषणा की कि उक्त प्रस्ताव में ऐसी कोई शर्त नहीं रखी गई है कि प्रस्ताव में उल्लिखित दोनों में से कोई भी विकल्प सरकार को स्वीकार्य न होने की स्थिति में भी सभापति द्वारा समिति की नियुक्ति की जानी चाहिए। अत: उनकी सम्मति में ऐसी परिस्थिति में उक्त प्रस्ताव के अनुसार उनके लिए ऐसी किसी समिति की नियुक्ति करना आवश्यक नहीं है।[78]

> 3 मार्च, 1987 को किसी गैर-सरकारी कम्पनी को जोर्डन में राजमार्ग के निर्माण का ठेका प्रदान किये जाने के बारे में तारांकित प्रश्न संख्या 87 पूछा गया था और उस पर अनुपूरक प्रश्न पूछे गये थे जिनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि सरकारी क्षेत्र की कम्पनी के हितों की उपेक्षा कर गैर-सरकारी कम्पनी को लाभ पहुंचाया गया है। वाणिज्य मंत्री और अन्य सदस्य यह चाहते थे कि सभापति द्वारा इस मामले की जांच की जाये। सभापति इससे सहमत हो गये और उन्होंने तद्नुसार इस मामले की जांच की और इस बारे में एक विस्तृत व्यवस्था दी।[79]

> 2 अगस्त, 1995 को रेलवे वैगनों की प्राप्ति के बारे में तारांकित प्रश्न संख्या 42 पूछा गया था। इस बात पर सभी सहमत थे कि सभापति इस मुद्दे की जांच करने के लिए सभा की कोई समिति नियुक्त कर सकते हैं। रेल मंत्री भी इससे सहमत थे। तद्नुसार, सभापति ने पन्द्रह सदस्यों की एक समिति गठित किये जाने की घोषणा की।[80]

उपसभापति

उपसभापति का निर्वाचन राज्य सभा द्वारा अपने सदस्यों में से किया जाता है।[81] उपसभापति का निर्वाचन उस तिथि को होता है जिसे सभापति निश्चित करे और महासचिव प्रत्येक सदस्य को इस तिथि की सूचना (नोटिस) भेजता है।[82] इस प्रकार से निश्चित तिथि के पहले दिन के मध्याह्न से पूर्व कोई भी सदस्य किसी भी समय इस प्रस्ताव की, कि किसी अन्य सदस्य को राज्य सभा का उपसभापति चुना जाये, महासचिव को सम्बोधित लिखित रूप में सूचना दे सकता है। उस सूचना का अनुमोदन एक तीसरे सदस्य से कराया जाना और सूचना के साथ प्रस्थापक सदस्य का यह कथन संलग्न किया जाना अपेक्षित है कि निर्वाचित होने पर वह उपसभापति के रूप में कार्य करने को सहमत है।[83] कोई सदस्य एक से अधिक प्रस्ताव प्रस्थापित या अनुमोदित नहीं कर सकता है।[84] सूचना प्राप्त करने की निर्धारित तिथि और निर्वाचन की तिथि तथा निर्वाचन की प्रक्रिया संसदीय समाचार में भी अधिसूचित की जाती है।[85]

इस प्रकार से प्राप्त प्रस्तावों की सूचनाएं उस कालानुक्रम में जिसमें वे सूचना कार्यालय में प्राप्त होती हैं, उस दिवस की कार्यावलि में सम्मिलित की जाती हैं जिस दिवस को उपसभापति का निर्वाचन होना है। प्रस्ताव का प्ररूप इस प्रकार है:

> अमुक व्यक्ति को राज्य सभा का उपसभापति चुना जाये।

निर्वाचन, प्रश्नों के समय के तत्काल पश्चात् होता है।

कार्यावलि में जिस सदस्य के नाम से कोई प्रस्ताव होता है, वह पुकारे जाने पर प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है या नहीं भी कर सकता है। यदि वह प्रस्ताव उपस्थित नहीं करता तो वह स्वयं को इस आशय के कथन तक ही सीमित रखता है। जो प्रस्ताव उपस्थित तथा विधिवत् समर्थित हो चुके हैं, वे सभापति द्वारा एक-एक करके उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रम में वे उपस्थित किए गये हैं और यदि आवश्यक हुआ तो विभाजन द्वारा उनका निर्णय किया जाता है। यदि कोई प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो सभापति अन्य प्रस्तावों को रखे बिना घोषणा करता है कि स्वीकृत प्रस्ताव में जिस सदस्य का नाम था उसे राज्य सभा का उपसभापति चुन लिया गया है।[86]

> 17 दिसम्बर, 1969 को उपसभापति के निर्वाचन के लिए प्रस्तावों पर विचार करने से पूर्व कुछ सदस्य यह चाहते थे कि गुप्त मतपत्र द्वारा मतदान कराया जाना चाहिए, और सभापति को नियम से छूट दे देनी चाहिए। सभापति ने वर्तमान नियम, परिपाटी और प्रक्रिया के आधार पर ऐसा करने से इंकार कर दिया। जहां तक नियम 7 का संबंध है, चूंकि इसमें मतदान का उपबंध नहीं किया गया है, अत: सभापति ने यह निर्णय दिया कि मतपत्र द्वारा मतदान नहीं कराया जा सकता है। हमेशा से यह परिपाटी रही है कि नियम को उसके वर्तमान स्वरूप में ही लागू किया जाता है और कोई भी परिपाटी वर्तमान नियम के विपरीत नहीं हो सकती है। यदि परिपाटी में परिवर्तन करना है, तो नियम में परिवर्तन करने के लिए उचित प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए। सभापति ने संबद्ध नियम को निलंबित रखने के लिए भी अपनी अनुमति प्रदान नहीं की। अत: उन्होंने यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावों को प्रस्ताव के क्रम-निर्धारण की परिपाटी के अनुसार उनके प्राप्त होने के समय के अनुरूप ही कार्यसूची में स्थान दिया गया है।[87]

> 29 जुलाई, 1980 को कुछ सदस्यों ने उपसभापति के निर्वाचन की विधि के बारे में एक मामला उठाया था, जो अगले दिन होना था। सदस्य चाहते थे कि निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा कराया जाना चाहिये और उन्होंने सभापीठ से नियमों में छूट देने का अनुरोध किया था।[88] सभापति ने आश्वासन दिया था कि वह इस मामले पर विचार करेंगे या उनके शब्दों में, ''जैसाकि न्यायाधीश कहते हैं, मुझे सलाह के अनुसार इस मामले पर

विचार करना होगा।'' अगले दिन उन्होंने निम्नलिखित निर्णय दिया:

> मैंने पूर्वनिर्णयों और नियमों पर विचार किया है। उनमें एक पूर्वनिर्णय 1969 का और दूसरा 1977 का है। दूसरे मामले में माननीय श्री राम निवास मिर्धा सर्वसम्मति से निर्वाचित किए गये थे और कोई प्रश्न पैदा नहीं हुआ था। 1969 में दो प्रतिद्वन्द्वी थे और नियम 252 से 254 के साथ पठित अध्याय-III के नियम 7 की प्रक्रिया अपनाई गई थी। इस पूर्वनिर्णय के आधार पर मुझे भी वही प्रक्रिया अपनानी चाहिए। तथापि, माननीय सदस्यों ने अनुरोध किया है कि मैं नियम 267 के अन्तर्गत कार्य करूं। यह कहा गया है कि निर्वाचन, एक प्रस्ताव के द्वारा किया जाता है और उक्त नियम के द्वारा किसी नियम को निलम्बित किया जा सकता है।
>
> यह सच है कि अध्याय-III के नियम 7 में जिसके अधीन निर्वाचन कराया जाता है, ''प्रस्ताव'' शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु नियम 7 के उपनियम (3) और (4) में, जिनसे छूट देने की मांग की गई है, में छूट नहीं दी जा सकती है। उपनियम (3) में छूट इसलिए नहीं दी जा सकती क्योंकि किसी सदस्य को तो प्रस्ताव उपस्थित करना ही चाहिए; अन्यथा निर्वाचन नहीं होगा। वह केवल अपना प्रस्ताव वापस ले सकता है। इस नियम से नहीं बचा जा सकता है। जहां तक उपनियम (4) का संबंध है, इसमें उपबंध है कि प्रत्येक प्रस्ताव पर बारी-बारी से सभा का मत लिया जायेगा और इसमें यह भी है कि ''यदि आवश्यक हुआ तो विभाजन के द्वारा निर्वाचन किया जायेगा।'' विभाजन की प्रक्रिया में पहले ध्वनिमत लिया जाता है, इसके बाद सदस्यों की गिनती की जाती है और तत्पश्चात् लॉबियों में जाकर या स्वचालित मत रिकार्डर के प्रचालन के द्वारा मतों को अभिलिखित किया जाता है। यदि नियम 7 के उपनियम (4) को निलम्बित करना है तो नियम 252 से 254 को भी निलम्बित किया जाना चाहिये।
>
> यहां उपस्थित वकीलों—सभा में बहुत से वकील हैं—को 'लॉलार्ड' की एक प्रसिद्ध टिप्पणी याद होगी जो न्यायालयों में हर रोज प्रयोग की जाती है जिसमें नियम को अत्यंत परिष्कृत शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। यह टिप्पणी इस प्रकार है: ''जब विधि में किसी कार्य को करने के लिए कतिपय रीति विहित कर दी जाती है तब वह कार्य उसी रीति से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिये: कार्य को करने की अन्य रीतियां आवश्यक रूप से निषिद्ध हैं।'' जब तक मेरे पास या किसी और के पास कोई नया नियम बनाने की अधिकारिता न हो तब तक हमें सिलसिलेवार विभाजन की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। हममें से कोई भी तदर्थ नियम नहीं बना सकता है। अत: विद्यमान नियम को ही अपनाया जाना चाहिए और अनुपालन की कोई अन्य रीति निर्मित नहीं की जा सकती है।
>
> इसलिए पूर्वनिर्णय और नियमों की युक्ति का अनुसरण करते हुए निर्वाचन विहित प्रक्रिया के अनुसार होगा।[89]

निर्वाचन के पश्चात् सभापति द्वारा उपसभापति का अभिनन्दन किया जाता है और इसके पश्चात् सभा का नेता और विपक्ष का नेता उपसभापति को सभापति के आसन तक ले जाते हैं। तत्पश्चात् सभा के सभी वर्गों के सदस्य उसको बधाई देते हैं जिसका उपसभापति द्वारा उत्तर दिया जाता है।

उपसभापति के अब तक हुए विभिन्न निर्वाचनों का ब्यौरा नीचे दिया गया है:

निर्वाचित उपसभापति का नाम	सत्र प्रारम्भ होने की तारीख	सूचना/संसदीय समाचार-भाग 2	निर्वाचन की तारीख	कार्यकाल
श्री एस॰ वी॰ कृष्णामूर्ति राव	13.5.1952	28.5.1952	31.5.1952* (शनिवार)	31.5.1952–2.4.1956$
श्री एस॰ वी॰ कृष्णामूर्ति राव	23.4.1956	9.4.1956	25.4.1956* (बुधवार)	25.4.1956–1.3.1962£
श्रीमती वायलेट आल्वा	17.4.1962	15.4.1962	19.4.1962* (बृहस्पतिवार)	19.4.1962–2.4.1966$
श्रीमती वायलेट आल्वा	14.2.1966	4.4.1966	7.4.1966* (बृहस्पतिवार)	7.4.1966–16.11.1969#
श्री बी॰ डी॰ खोबरागडे	17.11.1969	8.12.1969	17.12.1969@ (बुधवार)	17.12.1969–2.4.1972$

निर्वाचित उपसभापति का नाम	सत्र प्रारम्भ होने की तारीख	सूचना/संसदीय समाचार-भाग 2	निर्वाचन की तारीख	कार्यकाल
श्री गोडे मुराहरि	13.3.1972	10.4.1972	13.4.1972* (बृहस्पतिवार)	13.4.1972–2.4.1974$
श्री गोडे मुराहरि	22.4.1974	22.4.1974	26.4.1974* (शुक्रवार)	26.4.1974–20.3.1977£
श्री राम निवास मिर्धा	28.3.1977	28.3.1977	30.3.1977* (बुधवार)	30.3.1977-2.4.1980$
श्री श्याम लाल यादव	23.7.1980	26.7.1980	30.7.1980@ (बुधवार)	30.7.1980-2.4.1982$
श्री श्याम लाल यादव	26.4.1982	24.4.1982	28.4.1982** (बुधवार)	28.4.1982-29.12.1984£
डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	17.1.1985	23.1.1985	25.1.1985* (शुक्रवार)	25.1.1985-20.1.1986#
श्री एम॰ एम॰ जैकब	20.2.1986	20.2.1986	26.2.1986** (बुधवार)	26.2.1986-22.10.1986#
श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील	4.11.1986	12.11.1986	18.11.1986** (मंगलवार)	18.11.1986-5.11.1988#
डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	2.11.1988	10.11.1988	18.11.1988* (शुक्रवार)	18.11.1988-4.7.1992$
डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	8.7.1992	6.7.1992	10.7.1992@ (शुक्रवार)	10.7.1992-4.7.1998#
डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	27.5.1998	6.7.1998	9.7.1998* (बृहस्पतिवार)	9.7.1998-10.6.2004
श्री के॰ रहमान खान	05.7.2004	19.7.2004	22.7.2004 (बृहस्पतिवार)	22.7.2004-2.4.2006
श्री के॰ रहमान खान	10.5.2006	9.5.2006	12.5.2006 (शुक्रवार)	12.5.2006

* निर्विरोध निर्वाचित

@ चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी-2, ध्वनिमत से निर्णय लिया गया

** चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी-2, ध्वनिमत से निर्णय लिया गया

$ निवृत्त

£ लोक सभा के लिए निर्वाचित

त्याग-पत्र दिया

उपसभापति अपने निर्वाचन की तारीख से पद धारण करता है और जब वह सभा का सदस्य नहीं रहता/रहती है तो अपना पद रिक्त कर देता है/देती है।[90] वह किसी भी समय सभापति को सम्बोधित स्वहस्ताक्षरित-पत्र द्वारा अपना पद त्याग सकेगा/सकेगी।[91] उपसभापति को सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित सभा के संकल्प द्वारा भी अपने पद से हटाया जा सकेगा। ऐसे किसी संकल्प के प्रस्तावित किए जाने के आशय की चौदह दिन की सूचना देना अपेक्षित है।[92] जब भी उपसभापति निर्वाचित किया जाता है, त्याग-पत्र देता है या अन्यथा पद रिक्त करता है, तब इस आशय की एक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाती है।

उपसभापति सभा का पूर्णकालिक अधिकारी है। संसद् अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 तथा इसके अधीन बनाये गये नियमों के अधीन उपसभापति को ऐसे अधिकारी के रूप में अपने सम्पूर्ण कार्यकाल के दौरान, 12000/- रुपये प्रतिमाह वेतन, 10,000/- रुपये प्रतिमाह निर्वाचन क्षेत्र भत्ता, 1000/- रुपये प्रतिमाह सत्कार भत्ता और 500/- रुपये प्रतिमाह दैनिक भत्ता मिलता है। उक्त अधिनियम में यात्रा और दैनिक भत्तों की दरों और अन्य सुविधाओं जैसे आवास, दूरभाष, चिकित्सा आदि, जिनके लिए उपसभापति हकदार है, के संबंध में भी उपबंध किया गया है। उपसभापति का वेतन भारत की संचित निधि पर भारित है और सभा के मत के अध्यधीन नहीं है।[93] उपसभापति, संघ के राज्य मंत्रियों, योजना आयोग के सदस्यों और लोक सभा के उपाध्यक्ष के साथ-साथ अग्रता क्रम में दसवें स्थान पर होता है। डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला को 1999 में अंतर-संसदीय संघ की अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित होने पर कैबिनेट रैंक प्रदान किया गया था।[94]

जब सभापति का पद रिक्त हो या ऐसी अवधि में जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो या उसके कृत्यों का निर्वहन कर रहा हो तब उस पद के कर्त्तव्यों का पालन उपसभापति द्वारा किया जाता है।[95]

सभा की किसी बैठक से सभापति की अनुपस्थिति में, उपसभापति, सभापति के रूप में कार्य करता है।[96] जब वह ऐसा सभापतित्व कर रहा होता है या कर रही होती है तब उसे वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जोकि सभा का सभापतित्व करते हुए सभापति को प्राप्त होती हैं और राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में सभापति के प्रति सभी निर्देश उपसभापति के प्रति निर्देश समझे जाते हैं।[97] उपसभापति द्वारा दिये गये विनिर्णय से सभा के समक्ष उपस्थित मामले का निपटारा हो जाता है और उस मामले को पुन: नहीं उठाया जा सकता है। तथापि, जब कभी सभा में उठाये गये किसी विषय पर किसी विचार की आवश्यकता होती है तब उपसभापति, सभापति के विचार और निर्णय के लिए उसे निर्देशित करने अथवा आरक्षित करने के लिए स्वतंत्र होता/होती है।

राज्य सभा का सभापति भारत का उपराष्ट्रपति भी होता है और इस प्रकार उसके पास दोहरे कृत्य और उत्तरदायित्व होते हैं। इससे स्पष्ट है कि वह पूरे समय सभा की बैठकों का सभापतित्व नहीं कर सकता है। प्राय: सभापति बैठक के आरम्भिक समय में सभापतित्व करता है और उसके पश्चात् प्राय: उपसभापति आसन ग्रहण कर लेता/लेती है।

> आवश्यक सेवा विधेयक, 1981 पर विचार के दौरान जब सभा की बैठक 17 सितम्बर, 1981 को मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे से 18 सितम्बर, 1981 को मध्याह्न पूर्व 4.43 पर स्थगित होने तक जारी रही थी तब 40 मिनट के भोजनावकाश को छोड़कर उपसभापति ने केवल दो अल्प अन्तरालों के साथ 10 घंटे से अधिक अवधि तक पूरे समय सभापतित्व किया था।

तथापि, महत्त्वपूर्ण अवसरों और वाद-विवादों जैसे संविधान (संशोधन) विधेयक, आदि के समय सभापति भी, यदि सुविधाजनक हो, तो सभापतित्व कर सकता है।

> 21अप्रैल, 1987 को जब सभा में बोफोर्स के मामले पर वाद-विवाद हुआ था तब सभापति ने समूची बैठक के लिए सभा की कार्यवाही का सभापतित्व किया था।

अवसर की मांग के अनुसार, उपसभापति सभा में तत्समय लम्बित कार्य के संबंध में राज्य सभा में विभिन्न दलों और गुटों के नेताओं से परामर्श करने के लिए अनौपचारिक बैठकों का भी आयोजन करता/करती है।

प्रधान मंत्री के सुझाव पर उपसभापति ने इस बात पर विचार के लिए कि उत्पाद-शुल्क के मामले की जांच के लिए संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया जाये अथवा नहीं, नेताओं के साथ बैठक की थी।[98]

एक अन्य अवसर पर, उपसभापति ने सरकार के त्याग-पत्र के पश्चात् सभा द्वारा निपटाये जाने वाले कार्य के बारे में निर्णय लेने के लिए बैठक का आयोजन किया था।[99]

संसद् की सभाओं की किसी संयुक्त बैठक से अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के अनुपस्थित होने के दौरान, उपसभापति सभापतित्व करता/करती है।[100]

उपसभापति, सभा के समक्ष किसी विषय पर सभा में बोल सकता/सकती है, विचार-विमर्श में भाग ले सकता/सकती है और एक सदस्य के रूप में मत दे सकता/सकती है, किन्तु ऐसा वह तभी कर सकता/सकती है जब सभापति पीठासीन हो।

1 अगस्त, 1954 को जब सभापति पीठासीन थे तब उपसभापति श्री एस॰ वी॰ कृष्णामूर्ति राव ने केन्द्रीय रेशम बोर्ड (संशोधन) विधेयक, 1952 पर हुई चर्चा में भाग लिया था।

जब स्वयं उपसभापति पीठासीन हो तब वह, मतों के बराबर होने की अवस्था को छोड़कर, मत नहीं दे सकता/सकती है।[101]

परिपाटी के अनुसार, उपसभापति विधेयकों, संकल्पों आदि को प्रायोजित नहीं करता/करती है और न वह प्रश्न सभा पटल पर रखता/रखती है।

राज्य सभा सदस्य डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला ने 29 अप्रैल, 1983 को राज्य सभा में दिल्ली किराया नियंत्रण (संशोधन) विधेयक, 1983 पुर:स्थापित किया था। 25 जनवरी, 1985 को उन्हें उपसभापति निर्वाचित कर लिया गया। इसके पश्चात् उक्त विधेयक को गैर-सरकारी सदस्यों के लम्बित विधेयकों की सूची से हटा दिया गया ।[102]

8 मार्च, 1996 को उपसभापति डा॰ (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला ने ''अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस'' के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति और उनके कल्याण के संबंध में एक संकल्प उस समय उपस्थित किया था जब सभापति, जिन्होंने उक्त संकल्प का प्रस्ताव किया था, पीठासीन थे और वह सभा द्वारा स्वीकृत कर लिया गया था।

उपसभापति को कार्य मंत्रणा समिति[103] और नियम समिति[104] का सदस्य बनाया गया है और उसे सामान्य प्रयोजन समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जाता है।[105] यदि सभापति, जो इन समितियों का अध्यक्ष भी होता है, किसी कारण से इन समितियों में से किसी समिति की किसी बैठक का सभापतित्व करने में असमर्थ हो तो उपसभापति उस बैठक के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता/करती है।[106]

1981 तक, उपसभापति कार्य मंत्रणा समिति या नियम समिति का/की सदस्य नहीं होता था/होती थी। तथापि एक परिपाटी और प्रथा के अनुसार उसे एक विशेष अतिथि के रूप में इन समितियों की बैठकों में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता था। इसके बाद नियम समिति ने यह सिफारिश की कि उपसभापति को इन समितियों का सदस्य बनाया जाये और इस प्रयोजनार्थ कार्य मंत्रणा समिति की सदस्य-संख्या को 10 से बढ़ाकर 11 कर दिया जाये और नियम समिति की सदस्य-संख्या को 15 से बढ़ाकर 16 कर दिया जाये। संगत नियमों में तद्नुसार संशोधन किया गया।[107]

नियम समिति के प्रतिवेदन को प्राय: उस समय जब सभापति पीठासीन हो, उपसभापति द्वारा सभा में प्रस्तुत किया जाता है। तथापि,14 फरवरी, 1995 को उपसभापति ने सभापीठ से सभापतित्व करते समय नियम समिति का सातवां प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था।

यदि उपसभापति किसी अन्य संसदीय समिति का सदस्य हो तो उसे उस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।[108]

उपसभापति को 1958 से विशेषाधिकार समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित किया जाता रहा है और इसलिए उसे उस समिति का अध्यक्ष भी नियुक्त किया जाता रहा है।

केवल 1969 में, उपसभापति उस समिति का/की सदस्य नहीं था/थी और इसलिए एक अन्य सदस्य (श्री एम॰ सी॰ सीतलवाड) ने उस समिति की अध्यक्षता की थी।

मार्च, 1997 और सितम्बर, 1998 से उपसभापति को सभा के सदस्यों के लिए कम्प्यूटर प्रदान करने संबंधी समिति और संसद-सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति का सदस्य भी नामनिर्देशित किया गया है और इसलिए उसे इन समितियों का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया है।

उपसभापति को निम्नलिखित विधेयकों के संबंध में संसद् की सभाओं की संयुक्त समिति का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया था:

(1) बालक विधेयक, 1959 (श्री एस॰ वी॰ कृष्णामूर्ति राव)

(2) परिसीमा विधेयक, 1962 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(3) विदेशीय विवाह विधेयक, 1963 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(4) प्रेस परिषद् विधेयक, 1963 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(5) केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल विधेयक, 1966 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(6) एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1967 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

उपसभापति (श्रीमती वायलेट आल्वा) को संविधान के अनुच्छेद 118 के खण्ड (1) के अधीन प्रक्रिया विषयक प्रारूप नियमों की सिफारिश करने के लिए गठित समिति के अध्यक्ष के रूप में भी नियुक्त किया गया था।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994 के अधीन, उपसभापति उक्त अधिनियम के अन्तर्गत गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति की सिफारिश करने वाली समिति का भी एक सदस्य होता/होती है।[109]

अल्पकालीन सभापति

जब सभापति और उपसभापति दोनों के पद रिक्त हों तब राज्य सभा का ऐसा सदस्य जिसको राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे, सभापति के पद के कर्त्तव्यों का पालन करता है।[110] इस प्रकार नियुक्त सदस्य को अल्पकालीन सभापति (चेयरमैन प्रोटेम) कहा जाता है और यह नामकरण उसे पदेन सभापति से भिन्न कर देता है। राज्य सभा में पहली बार जब उपराष्ट्रपति (श्री बी॰ डी॰ जत्ती) राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे और श्री गोडे मुराहरि द्वारा धारित उपसभापति का पद, लोक सभा के लिए उनका निर्वाचन हो जाने के परिणामस्वरूप 20 मार्च, 1977 को रिक्त हो गया था तब राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति ने 24 मार्च, 1977 को निम्नलिखित आदेश दिया था:

> यत: उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे हैं और राज्य सभा के उपसभापति का पद भी रिक्त है:
>
> अत: मैं भारत के संविधान के अनुच्छेद 91 के खण्ड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सभा द्वारा उपसभापति चुन लिए जाने तक राज्य सभा के सभापति के पद के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए राज्य सभा के सदस्य श्री बनारसी दास को नियुक्त करता हूं।[111]

28 मार्च, 1977 को 100वां सत्र आरंभ हुआ था। उस बैठक में केवल दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि और सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों संबंधी औपचारिक कार्य ही किया गया था।[112]

29 मार्च, 1977 के लिए नियत सभा की बैठक राम नवमी के उपलक्ष्य में रद्द कर दी गई थी।[113] उपसभापति का निर्वाचन 30 मार्च, 1977 को हुआ। इसके पश्चात् 'अल्पकालीन' सभापति ने पद छोड़ दिया।[114] इन दिनों में प्रश्नों का समय नहीं था क्योंकि सत्र का आह्वान अल्प सूचना पर कर दिया गया था।[115]

उपसभाध्यक्ष तालिका

सभापति, समय-समय पर सभा के सदस्यों में से अधिक से अधिक छह उपसभाध्यक्षों की एक तालिका नामनिर्देशित करता है। सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में उनमें से कोई एक सभा का सभापतित्व करता है।[116]

1981 की समाप्ति तक उपसभाध्यक्षों की तालिका में चार सदस्य होते थे। नियम समिति ने यह सिफारिश की थी कि तालिका में सदस्यों की संख्या को बढ़ाकर छह किया जाना चाहिये और ऐसी सिफारिश करते समय समिति ने यह टिप्पणी की थी: ''समिति के ध्यान में यह बात लाई गई है कि उक्त तालिका में चार उपसभाध्यक्षों की वर्तमान संख्या पर्याप्त नहीं है क्योंकि कभी-कभी, विशेषकर उस समय जब सभा की देर तक बैठकें होती हैं, तब सभापतित्व के लिए चार उपसभाध्यक्षों में से कोई भी उपलब्ध नहीं होता।[117] नियम समिति ने 2 दिसम्बर, 1981 को सभा में अपना तीसरा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और इस प्रतिवेदन को सभा द्वारा 24 दिसम्बर, 1981 को स्वीकृत किया गया।

सभापति द्वारा पहली तालिका, जो चार सदस्यों से मिलकर बननी थी, 16 मई, 1952 को (अर्थात् राज्य सभा की पहली बैठक के तीन दिन पश्चात्) नामनिर्देशित की गई थी। सभापति ने सभा को सूचित किया था कि उन्होंने उपसभाध्यक्षों की तालिका में तीन सदस्यों को नामनिर्देशित कर दिया है और एक रिक्ति भरी नहीं गई है। उन्होंने यह टिप्पणी की थी:

> ''हमने कहा है कि चूंकि इस सभा के अध्यक्ष को सभापति की संज्ञा दी जाती है, इसलिए यहां उपसभाध्यक्षों की एक तालिका होगी। अत: यह कहा गया है कि सभा में उपसभाध्यक्षों की एक तालिका होगी...लोक सभा में भी अध्यक्षों की एक तालिका है।''[118]

यह तालिका आचार्य नरेन्द्र देव, श्री मुकंद लाल पुरी और बेगम एज़ाज रसूल से मिलकर बनी थी। आचार्य नरेन्द्र देव ने तब तक शपथ नहीं ली थी/प्रतिज्ञान नहीं किया था। तथापि, सभापति को तार भेजकर उन्होंने उपसभाध्यक्ष के रूप में सेवा करने के लिए अपनी सहमति दे दी थी।[119] इसके पश्चात् समय-समय पर पूरी तालिका के पुनर्गठन/नामनिर्देशन की सामान्य प्रथा रही है।

> तथापि, 1992 में नामनिर्देशित की गई तालिका में पांच सदस्य थे। छठे सदस्य को बाद में सम्मिलित किया गया।[120]

कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि तालिका से किसी सदस्य की नाम-वापसी या त्याग-पत्र या सेवानिवृत्ति को ध्यान में रखते हुए ऐसी तालिका एक ही वर्ष में एक से अधिक बार पुनर्गठित करनी पड़ी।[121]

1997 में, ऐसा अवसर भी आया जब तालिका में छह से अधिक सदस्य थे। 180वें सत्र के दौरान, राज्य सभा के सभापति ने विद्यमान तालिका में दो अतिरिक्त सदस्यों को नामनिर्देशित किया था। नई तालिका, जिसका गठन सभापति द्वारा 1 अगस्त, 1997 को किया गया था, में आठ सदस्य थे।[121क]

उपसभाध्यक्षों की तालिका के लिए सदस्यों के नामनिर्देशन में सभापति, सभा में विभिन्न दलों की सदस्य-संख्या को ध्यान में रखता है और परिपाटी के अनुसार, तालिका के लिए नामनिर्देशन हेतु विपक्षी

दलों/गुटों के कुछ सदस्यों का भी चयन करता है। सभापति अन्तिम चयन करने से पहले इस प्रयोजनार्थ राजनीतिक दलों/गुटों के नेताओं से भी परामर्श कर सकता है।

कुछ ऐसे भी अवसर रहे हैं जब किसी उपसभाध्यक्ष ने सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में किसी बैठक के आरम्भ में भी सभापतित्व किया है।[122] एक बार, उपसभाध्यक्ष ने निरन्तर 5 घंटे से अधिक अवधि तक सभापतित्व किया था और 119वें सत्र में सभा को अनिश्चित काल तक स्थगित किए जाने से पहले विनोद में कहा था: ''यदि मुझे यह पता होता कि मेरी यह नियति होगी तो मैं अनुपस्थित रहता।''[123]

उपसभाध्यक्ष, जब सभा की किसी बैठक का सभापतित्व कर रहा हो तब उसे वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जोकि इस प्रकार सभापतित्व करते हुए सभापति को प्राप्त होती हैं।[124] तथापि, वह सभा में सभी चर्चाओं में पूर्णत: भाग लेने के लिए स्वतंत्र है। सुस्थापित परिपाटी के अनुसार उपसभाध्यक्षों की तालिका के सदस्य को कार्य मंत्रणा समिति की बैठकों में विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता है। उन्हें सामान्य प्रयोजन समिति की बैठकों के लिए भी नामनिर्देशित किया जाता है।

उपसभाध्यक्ष जब सभापतित्व कर रहा हो तब प्रथमत: मत नहीं दे सकता है और बराबर मत होने की अवस्था में उसे निर्णायक मत देना पड़ता है। अब तक केवल एक ऐसा उदाहरण है जब उपसभाध्यक्ष ने बराबर मत होने की अवस्था में निर्णायक मत दिया था।[125]

> 5 अगस्त, 1991 को एक सदस्य (सत्तारूढ़ दल) ने दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 का निरनुमोदन करते हुए एक संकल्प उपस्थित किया था। अध्यादेश और इसका स्थान लेने वाले विधेयक पर चर्चा के पश्चात् सदस्य ने संकल्प वापस लेने के लिए सभा की अनुमति मांगी थी। उपसभाध्यक्ष ने प्रस्ताव उपस्थित किया था कि क्या सभा सदस्य को संकल्प वापस लेने की अनुमति देती है। जब एक सदस्य ने असहमति व्यक्त की तब संकल्प पर सभा का मत लिया गया।[126] जब मतों की गिनती की गई तो 'हां' वाले सदस्यों की संख्या उनतालीस थी और 'ना' वाले सदस्यों की संख्या भी उनतालीस थी अर्थात् उनकी संख्या बराबर थी। उस समय उपसभाध्यक्ष ने संकल्प के पक्ष में अर्थात् अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु विपक्ष के साथ निर्णायक मत दिया था। हमारी संसद् के इतिहास में सभापीठ द्वारा संविधान के अनुच्छेद 100 के अधीन निर्णायक मत देने का यह पहला अवसर था।[127]

उपसभाध्यक्ष, नई उपसभाध्यक्ष-तालिका नामनिर्देशित होने तक पद धारण करता है।[128] एक ही सदस्य को पुन: नामनिर्देशित भी किया जा सकता है। यदि कोई उपसभाध्यक्ष अपने पद से त्याग-पत्र दे देता है तो उसके स्थान पर एक अन्य सदस्य को नामनिर्देशित किया जा सकता है।[129]

> उपसभाध्यक्ष के विरुद्ध कतिपय अनादरसूचक टिप्पणियां की गई थीं। सभा (67वां सत्र) को अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित किए जाने से पूर्व उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की थी: ''सभापीठ की भावना को ठेस पहुंची है और सभापीठ के पद को उचित ठहराने के एक उपाय के रूप में मैं उपसभाध्यक्ष-तालिका से अपने त्याग-पत्र की घोषणा करता हूं।[130] तथापि, बाद में पुनर्गठित तालिका में उन्हें पुन: नामनिर्देशित कर लिया गया था।[131]

तालिका से बाहर के सदस्य द्वारा सभापतित्व

जब सभापतित्व करने के लिए न तो सभापति, न उपसभापति और न कोई उपसभाध्यक्ष उपस्थित हो तो ऐसा अन्य सदस्य जो सभा द्वारा अवधारित किया जाये सभापति के रूप में कार्य करता है।[132] यह प्रथा है कि सभापीठ छोड़ने वाला पीठासीन अधिकारी सभा के अनुमोदन से किसी सदस्य से सभापीठ ग्रहण करने का अनुरोध करता है। ऐसा सदस्य उपसभापति या किसी उपसभाध्यक्ष के सभापतित्व करने के लिए उपलब्ध होने तक अस्थायी रूप से सभापतित्व करता रहता है। दूसरे शब्दों में ऐसा सदस्य उस समय सभापतित्व नहीं कर सकता है जब कोई उपसभाध्यक्ष सभा में उपस्थित हो।

संविधान के अनुच्छेद 91(2) में अन्तर्विष्ट इस उपबंध का पहली बार 18 मार्च, 1987 को उस समय प्रयोग किया गया था जब उपसभापति ने यह कहा था: ''अगला विषय लेने से पहले मुझे एक घोषणा करनी है। यदि सभा सहमत हो तो मैं श्री सुकुल से अनुरोध करूंगी कि वह मेरी अनुपस्थिति में सभापतित्व करें क्योंकि इस समय तालिका का कोई भी सदस्य सभा में उपस्थित नहीं है।'' एक सदस्य ने इसके उत्तर में यह कहा था कि ''हम इसका स्वागत करते हैं।''[133]

उपसभापति/उपसभाध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं

जैसाकि बताया जा चुका है, उपसभापति या उपसभाध्यक्ष पैनल के किसी सदस्य को सभापतित्व करते समय वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जोकि सभापति को सभा की बैठक का सभापतित्व करते समय प्राप्त होती हैं।[134] निरन्तर यह निर्णय किया जाता रहा है कि सभापति की अनुपस्थिति में सभा की बैठक का सभापतित्व कर रहे उपसभापति या किसी अन्य सदस्य द्वारा दी गई व्यवस्था के विरुद्ध सभापति को कोई अपील नहीं की जा सकती है। सभापीठ से दी गई व्यवस्था के पश्चात् सभा के सामने आए हुए मामले का निपटारा हो जाता है और उस पर पुन: विचार नहीं किया जा सकता है।

31 मार्च, 1967 को जब विदेश मंत्री सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) विधेयक, 1967 का संचालन कर रहे थे, तब यह औचित्य का प्रश्न उठाया गया था कि नागालैण्ड के भारत का एक अभिन्न अंग होने के कारण गृह मंत्री के बजाय क्या वह इस विधेयक का संचालन कर सकते हैं। उपसभाध्यक्ष ने यह कहते हुए उस औचित्य के प्रश्न को खारिज कर दिया कि इस मामले पर अन्तत: यह निर्णय लिया गया है कि विदेश मंत्री को ही यह कार्य करना चाहिए।[135] 3 अप्रैल, 1967 को जब सदस्य ने उसी औचित्य के प्रश्न को सभापति के सामने पुन: उठाना चाहा, तो उन्होंने यह व्यवस्था दी, ''यदि किसी एक पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी मामले का निपटान कर दिया गया है, तो दूसरा पीठासीन अधिकारी उस पर विचार नहीं करेगा।''[136]

2 दिसम्बर, 1968 को उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1968 पर, जिस रूप में वह प्रवर समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया था, विचार करने के प्रस्ताव पर और उक्त विधेयक को समिति को पुन: सौंपे जाने के संशोधन पर साथ-साथ चर्चा की जानी चाहिए। जब एक सदस्य ने यह सुझाव दिया कि इस मामले को व्यवस्था के लिए सभापति के पास भेजा जाना चाहिए, तब उपसभापति ने यह टिप्पणी की, ''इस समय सभा का संचालन मैं कर रही हूं।''[137] इस मामले को 3 दिसम्बर, 1968 को पुन: उठाया गया था। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ''मैं इस सभापीठ पर आसीन होने वाले भद्र पुरुष या महिला द्वारा दी गई व्यवस्थाओं में संशोधन नहीं कर सकता हूं... मैं उपसभापति या उपसभाध्यक्ष की व्यवस्था का सम्मान करना चाहूंगा। मेरे स्थान पर बैठने वाले व्यक्ति को सभापति के समान ही दर्जा और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और मैं इस प्रकार की कोई परम्परा नहीं बनाना चाहूंगा जिसमें सभापति, उपसभापति या उपसभाध्यक्ष की व्यवस्था के विपरीत निर्णय करें।''[138]

एक अन्य अवसर पर उपसभाध्यक्ष ने यह आदेश दिया, ''इस मुद्दे पर किसी भी बात को अभिलिखित नहीं किया जायेगा।[139] 1 जुलाई, 1980 को एक सदस्य ने सभा की कार्यवाही के किसी अंश को निकाले जाने के सभापीठ के आदेश के अधिकार पर आपत्ति करते हुए एक मामला उठाया था। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ''मुझे उपसभाध्यक्ष द्वारा दी गई व्यवस्था का, जो पीठासीन थे, समर्थन करना चाहिए। यह व्यवस्था मेरे द्वारा दी गई व्यवस्था जैसी ही है। यदि मैं उन व्यवस्थाओं में संशोधन करना आरम्भ कर दूं, तो कार्य कभी समाप्त नहीं होगा और काफी कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी।''[140]

22 दिसम्बर, 1980 को सभा की बैठक मध्य रात्रि के पश्चात् भी चलती रही और उस समय सभापतित्व कर रहे उपसभापति द्वारा बैठक को जारी रखने के विरुद्ध उठाये गये औचित्य के प्रश्न को खारिज कर दिया गया था।[141] 23 दिसम्बर, 1980 को हुई अगली बैठक में जब कुछ सदस्यों ने इस मामले को उठाना चाहा तब सभापति ने यह टिप्पणी की, ''जब उपसभापति इस सभापीठ पर आसीन होते हैं, तब वह मेरा ही प्रतिनिधित्व करते हैं और मैं उनके किसी कार्य के बारे में कोई निर्णय नहीं कर सकता हूं, अन्यथा प्रतिदिन मुझे अपीलें सुननी होंगी, संशोधन करने होंगे, समीक्षा करनी होगी और न जाने क्या-क्या करना होगा।''[142]

तथापि, जब कभी भी सभा में उठाये गये किसी मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता होती है या जिसमें पूर्वोदाहरण अथवा अध्ययन अन्तर्ग्रस्त होता है तब उपसभापति या उपसभाध्यक्ष उक्त मामले को सभापति के विचार एवं उस पर उसके निर्णय के लिए आरक्षित रखने के लिए स्वतन्त्र होता है। जैसाकि सभापति ने एक अवसर पर टिप्पणी की है:

> ''जैसाकि हम उच्चतम न्यायालय और सभी न्यायालयों में करते हैं, यदि मैं किसी खंडपीठ में न्यायाधीश के रूप में सम्मिलित हूं, तो मैं निर्णय कर सकता हूं। लेकिन हमारा यह कहना होता है कि नहीं, मैं इस विषय को इससे बड़ी खंडपीठ के लिए आरक्षित करूंगा। वस्तुत: उपसभापति या उपसभाध्यक्ष जब मेरे लिए किसी विषय को आरक्षित करते हैं, तब वे यह मानते हैं कि यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय है जिसकी जानकारी मुझे होनी चाहिए, और मुझे ही उस पर कोई निर्णय करना चाहिए। मेरे विचार में यह अत्यधिक विधि सम्मत कार्य प्रणाली है...''[143]

2 जुलाई, 1980 को सभापति ने सदस्यों को उत्तर प्रदेश और राजस्थान विधान सभाओं के अध्यक्षों के निर्वाचन के लिए अनुच्छेद 178 के अधीन संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में विफल रहने से उत्पन्न स्थिति पर एक मामला उठाने की अनुमति प्रदान की थी। इस विषय पर चर्चा करने के सभा के अधिकार और उल्लेख हेतु इसे स्वीकार करने के औचित्य पर आपत्ति प्रकट की गई थी। उपसभाध्यक्ष ने इस विषय को सभापति द्वारा विचार किये जाने हेतु आरक्षित कर दिया।[144] सभापति ने अगले दिन अपनी व्यवस्था दी।[145]

25 अगस्त, 1981 को सभा में असम बजट और सम्बद्ध विनियोग विधेयक पर चर्चा के दौरान एक औचित्य प्रश्न उठाया गया जो असम के राज्यपाल द्वारा 1 अप्रैल, 1981 को प्रख्यापित असम (लेखानुदान) विनियोग अध्यादेश को सभा पटल पर न रखे जाने के बारे में था। यह अध्यादेश असम विधान सभा द्वारा दत्तमत अनुदानों को सम्मिलित करने के लिए था जिसका अनियत दिन के लिए स्थगन कर दिया गया था और बाद में उसके द्वारा विनियोग विधेयक पारित करने के पहले ही सत्रावसान कर दिया गया था। कुछ सदस्यों का यह तर्क था कि असम में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 213 के अंतर्गत अध्यादेश को संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखा जाना चाहिए। उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि यह आवश्यक नहीं है।[146] विधेयक लोक सभा को लौटा दिया गया। तथापि, अगले दिन सभा में सभापति के समक्ष इस मामले को पुन: उठाया गया था। सभापति ने निम्नलिखित व्यवस्था दी:

> ''मैं तीन सामान्य कारणों से अब तक उठाये गये विवादास्पद मुद्दों पर कोई राय व्यक्त नहीं करता हूं और न ही कर सकता हूं। सर्वप्रथम पीठासीन सभापति द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय सभा के लिए बाध्यकारी होता है; मेरे पास कोई अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियां नहीं हैं और यदि मैं सभापीठ द्वारा दी गई व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप करने लगूं तो उससे इस तरह की बातों का कोई अन्त नहीं होगा। दूसरा कारण और भी अधिक महत्वपूर्ण है। जब इस मामले पर विचार-विमर्श हो रहा था, तब उपसभापति मुझसे या हमारे अन्य साथियों से बातचीत कर सकते थे। लेकिन अब यह मामला बिल्कुल भिन्न अवस्था में पहुंच गया है, अधिवक्ता इसे 'पदकार्य निवृत्त' की संज्ञा देते हैं, सभा अपना कार्य समाप्त कर चुकी है। विधेयक लोक सभा को लौटाया जा चुका है। हम उसे फिर से नहीं मंगा सकते हैं। हमारी सभा विधेयक से संबंधित अपना कार्य सम्पन्न कर चुकी है। अत: विधेयक इस सभा द्वारा पारित स्वरूप में ही बना रहना चाहिए। कोई अन्य अधिकरण, यदि आप इस मामले को किसी अन्य अधिकरण में उठाना चाहते हैं, आपके तर्क के संबंध में अपनी व्यवस्था दे सकता है, लेकिन इस सभा में कल जो कुछ भी हुआ है उस पर इस सभा का कोई भी सदस्य आपके तर्क पर अपनी व्यवस्था नहीं दे सकता है। तीसरा कारण यह है कि उच्च न्यायालय में कार्यवाही लंबित है। कुछ मुद्दों को अंशत: उठाया जाता है और उसमें संभवत: कुछ और मुद्दों को जोड़ा जा सकता है। अत: मैं यह आवश्यक नहीं समझता हूं कि मुझे अब तक जो कुछ कहा गया है उसके बारे में अपनी कोई व्यवस्था देनी चाहिए।''

तथापि, सभापति ने ऐसे सीमित प्रश्नों की जांच करने का वचन दिया कि क्या भविष्य में इसी प्रकार की परिस्थितियों में अध्यादेश को सभापटल पर रखा जाना चाहिए और क्या विवादास्पद अध्यादेश को अभी भी सभापटल पर रखा जाना चाहिए।[147] तद्नुसार सभापति ने 8 सितम्बर, 1981 को एक व्यवस्था दी।

संसदीय समितियों के अध्यक्ष

संसदीय समिति के अध्यक्ष (इसके पश्चात् इस भाग में समिति अध्यक्ष के रूप में निर्दिष्ट) की नियुक्ति

सभापति द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है। राज्य सभा में समिति अध्यक्षों के पदों पर अनौपचारिक प्रबन्ध और विचार-विमर्श से सत्तारूढ़ और विपक्षी दलों के सदस्यों की नियुक्तियां की जाती हैं। इससे समिति अध्यक्षों की नियुक्तियां करने का सभापति का कार्य आसान हो जाता है। सभापति तीन समितियों — कार्य मंत्रणा, नियम और सामान्य प्रयोजन समितियों का अध्यक्ष होता है। यदि उपसभापति किसी अन्य समिति का सदस्य होता/होती है, तो उसे अनिवार्यत: उक्त समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ, विशेषाधिकार समिति। राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये विधेयकों संबंधी संयुक्त/प्रवर समितियों के मामले में अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो सत्तारूढ़ दल का न हो। निम्नलिखित दृष्टांतों में ऐसे सदस्यों को विभिन्न समितियों के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया था जोकि सत्तारूढ़ दल से सम्बद्ध नहीं थे:

श्री योगेन्द्र शर्मा (भाकपा)—अध्यक्ष, भारतीय दण्ड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1970 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री प्रकाश वीर शास्त्री (निर्दलीय)—अध्यक्ष, केन्द्रीय और अन्य सोसाइटी (विनियमन) विधेयक, 1972 संबंधी संयुक्त समिति;

प्रो॰ ए॰ आर॰ वाडिया (नामनिर्देशित)—अध्यक्ष, दिल्ली प्राथमिक शिक्षा विधेयक, 1960 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री जैरामदास दौलतराम (नामनिर्देशित)—अध्यक्ष, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1964 संबंधी संयुक्त समिति;

डा॰ एम॰ एस॰ आदिशेषैया (नामनिर्देशित)—अध्यक्ष, विश्व भारती (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री एरा सेजियन (जनता पार्टी)—अध्यक्ष, चिट फंड विधेयक, 1982 संबंधी प्रवर समिति।

यदि कोई समिति अध्यक्ष त्याग-पत्र दे देता है या किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ होता है, तो सभापति समिति के किसी अन्य सदस्य को उसके स्थान पर समिति अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करता है। समिति की किसी बैठक में समिति अध्यक्ष की अनुपस्थिति में समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[148]

समिति अध्यक्ष, समिति की बैठकों की अध्यक्षता करता है और सभा की कार्यवाहियों के संबंध में सभापति की भांति ही समिति की प्रक्रिया एवं कार्यकरण के संबंध में उसके विभिन्न दायित्व, कार्य और शक्तियां होती हैं। समिति अध्यक्ष ऐसी उपसमिति के अध्यक्ष/संयोजक की नियुक्ति करता है जिसका गठन करने का समिति निर्णय करे। वह समिति की बैठकों की तिथि एवं समय नियत करता है। यदि समिति की बैठक के लिए नियत समय पर या ऐसी बैठक में किसी समय ''गणपूर्ति'' का अभाव हो, तो वह ''गणपूर्ति'' होने तक या तो उस बैठक को निलंबित कर सकता है या बैठक को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित कर सकता है।

विधेयकों संबंधी प्रवर समिति के संबंध में नियम 74(3) में यह उपबंध किया गया है कि समिति की बैठकों के लिए नियत की गई लगातार दो तिथियों को ''गणपूर्ति'' के अभाव में प्रवर समिति की बैठक स्थगित किये जाने पर समिति अध्यक्ष को सभा को इस तथ्य की जानकारी देनी होती है। अब तक सिर्फ एक बार ही ऐसा अवसर आया है जबकि एक समिति के अध्यक्ष द्वारा एक वक्तव्य के रूप में इसकी जानकारी दी गई है। पोत परिवहन अभिकर्ता (अनुज्ञापन) विधेयक, 1987 संबंधी सभाओं की संयुक्त समिति के अध्यक्ष (श्री बी॰ ए॰ मासोदकर) ने ''गणपूर्ति'' के अभाव में समिति की बैठकों के स्थगन के बारे में एक वक्तव्य दिया था।[149]

समिति में उठने वाले प्रक्रिया संबंधी मामलों का निर्णय समिति अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संदेह की स्थिति में, वह उस मुद्दे को, यदि यह उचित समझे, सभापति के पास निर्णयार्थ भेज सकता है। समिति में

विचार-विमर्श के दौरान यदि किसी विषय पर लिए गये मतों की संख्या बराबर होती है, तो समिति अध्यक्ष प्रथमत: मतदान नहीं करता है लेकिन उसके पास निर्णायक मत होता है।[150] समिति अध्यक्ष द्वारा समिति की बैठकों के कार्यवृत्तों का अनुमोदन किया जाता है और समिति की ओर से उसके द्वारा इसके प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर किये जाते हैं।[151] यदि समिति अध्यक्ष की राय में समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न किये जाने वाले किसी सदस्य की असहमति संबंधी कार्यवृत्त में ऐसे शब्द, वाक्यांश या अभिव्यक्तियां हैं, जोकि असंसदीय, असंगत या अन्यथा अनुचित हों, तो वह असहमति संबंधी कार्यवृत्त से ऐसे शब्दों, आदि को निकाल दिये जाने का आदेश दे सकता है।[152] समिति का प्रतिवेदन सभा में समिति अध्यक्ष द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है।[153]

> नियम 91(2) में यह उपबन्ध किया गया है कि किसी विधेयक संबंधी प्रवर समिति के प्रतिवेदन को उपस्थित करते समय समिति अध्यक्ष यदि कोई टिप्पणी करता है तो वह अपने आपको तथ्य के संक्षिप्त कथन तक सीमित रखेगा। अनेक अवसरों पर समिति अध्यक्षों ने सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति के प्रतिवेदन को उपस्थित करते समय आश्वासनों के क्रियान्वयन में हुई प्रगति के बारे में बताया है।[154]

किसी संसदीय समिति (विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति या अन्य कोई तदर्थ समिति के अतिरिक्त) के अध्यक्ष को दिल्ली या नई दिल्ली में उसके आवास पर लगाये गये टेलीफोन से की गई स्थानीय कॉल के लिए किसी प्रकार के प्रभारों के भुगतान से छूट प्राप्त होती है। यह छूट एक सदस्य के रूप में टेलीफोन प्रभारों के संबंध में उसे प्राप्त छूट के अतिरिक्त है।[155] वह समिति से संबंधित कार्य का निष्पादन करते समय किसी संसद्-सदस्य को दी जाने वाली दर से यात्रा एवं दैनिक भत्तों का हकदार भी होता है।[156]

सदन का नेता

सदन का नेता एक महत्त्वपूर्ण संसदीय कृत्यकारी है जो, पीठासीन अधिकारियों, विपक्ष के नेता और सचेतकों की भांति, वाद-विवाद में सदस्यों की सहभागिता को प्रभावी और सार्थक बनाता है। यह देखा जा सकता है कि इस पद का प्रादुर्भाव यूनाइटेड किंगडम में ''हाउस ऑफ कॉमन्स'' में प्रचलित प्रथा से हुआ जहां सरकार के उस सदस्य को जो सरकारी कार्य की व्यवस्था के लिए प्रधान मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है, सदन के नेता के रूप में जाना जाता है। यह कोई सांविधिक पद नहीं है और न सभा के नेता को ''क्राउन'' द्वारा औपचारिक रूप से नियुक्त किया जाता है। प्राय: वह किसी और पद के साथ-साथ यह पद धारण करता है।[157]

सदन का नेता कार्यवाही के सभी प्रमुख विषयों की प्रक्रिया के बारे में सुझाव देता है और काफी हद तक उसे निर्धारित करता है, सदस्यों के क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण करता है और उनमें सामंजस्य बनाये रखता है, औपचारिक प्रक्रिया के मामले में पहल करता है तथा कठिनाई उत्पन्न होने पर सदन को सलाह देता है।[158] सरकारी कार्य की व्यवस्था उसके नियंत्रण के अध्यधीन मुख्य सचेतक द्वारा की जाती है और सदन का नेता सामान्यत: प्रत्येक बृहस्पतिवार को प्रश्नों के पश्चात् सरकारी कार्य की घोषणा करता है।

सभा के नेता को अपने पांच उत्तरदायित्वों अर्थात् सरकार के प्रति, पीछे की बैंचों में बैठने वाले सरकार के समर्थकों के प्रति, विपक्ष के प्रति, समूची सभा क॓ प्रति और प्रत्येक प्रभारी मंत्री के प्रति सजग रहना चाहिये।[159] उसे यथासंभव सदन के दोनों पक्षों के लिए सुलभ होना चाहिये। सरकारी सचेतकों के साथ उसका घनिष्ठ, सौहार्दपूर्ण और सहयोगपूर्ण संबंध होना चाहिये। उसे यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ऐसे मामलों पर वाद-विवाद करने हेतु जिनमें वास्तव में सदन की

दिलचस्पी है, सदन को सभी उचित सुविधाएं उपलब्ध कराना सरकार का कर्त्तव्य है और उसे स्वयं को न केवल सरकार का एक सदस्य समझना चाहिये बल्कि समूचे सदन के अधिकारों का प्रधान संरक्षक भी समझना चाहिये।[160] वह समय-समय पर सदन की कार्यवाही के बारे में प्रक्रियात्मक प्रस्ताव उपस्थित करता है, औपचारिक अवसरों पर सभा की भावना व्यक्त करता है और सरकार को इस बारे में सिफारिश करता है कि गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्तावों और विधेयकों पर सरकार को क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। अत: उसे सामान्यत: सदन में या अपने कक्ष में उपस्थित रहना पड़ता है ताकि सरकारी कार्य के संचालन हेतु एक उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय लिया जा सके। साथ ही सदन का नेता एक प्रबंधक से बढ़कर भूमिका निभाता है। वह न केवल अपने दल का नेता और सरकार का नेता होता है बल्कि सदन का भी नेता होता है। कुछ मामलों में तो वह अध्यक्ष (स्पीकर) का स्थान ले लेता है। संक्षेप में जब सदन में एक सम्मिलित निकाय के रूप में कोई चर्चा होती है तो उसमें वह सदन की ओर से बोलता है। वह राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व की घटना के अवसर पर सदन की ओर से एक सक्रिय प्रतिनिधि होता है।[161]

1968 में पीठासीन अधिकारियों द्वारा नियुक्त पागे समिति ने सदन के नेता के कर्त्तव्यों और कृत्यों के बारे में निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:

> उसे अधिकांश समय और प्रश्नों के समय के दौरान तथा इसके पश्चात् सदन की सामान्य कार्यवाही आरम्भ होने पर सदन में उपस्थित रहना चाहिये। कार्यवाही के संचालन में अध्यक्ष की सहायता करना उसका सर्वोपरि कर्त्तव्य है। चर्चा में हस्तक्षेप करने, वाद-विवाद के लिये अवसर प्रदान किए जाने, चर्चा के लिए समय और तारीख नियत किए जाने के मामले में विपक्ष की मांगों का उत्तर देने, सदस्यों के उच्छृंखल व्यवहार को नियंत्रित करने और सदन के समक्ष आए हुए मामलों के संबंध में किन्हीं निर्णयों पर पहुंचने में अध्यक्ष की सहायता करने के लिए उसे हर समय तैयार रहना चाहिये। यदि सदन का नेता अपरिहार्य रूप से अनुपस्थित हो या अन्यथा व्यस्त हो तो उसे एक उपनेता नामनिर्देशित करना चाहिये जिसे सदन के नेता की अनुपस्थिति में उस समय उपर्युक्त कृत्यों का पालन करना चाहिये। इस तरह या तो नेता को या उपनेता को सदन में उपस्थित रहना चाहिये।[162]

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 2(1) में दी गई परिभाषा के अनुसार सदन के नेता का तात्पर्य प्रधान मंत्री से है यदि वह सदन का सदस्य हो या उस मंत्री से है जो सदन का सदस्य हो और सदन के नेता के रूप में कार्य करने के लिए प्रधान मंत्री द्वारा नामनिर्देशित किया गया हो। यद्यपि उक्त परिभाषा को 1981 में नियम पुस्तिका में 24 दिसम्बर, 1981 को सदन में स्वीकृत संशोधन द्वारा सम्मिलित किया गया था तथापि राज्य सभा में सदन के नेता का पद, 1952 में राज्य सभा के प्रारम्भ होने से ही विद्यमान है। सदन के नेता का उल्लेख सबसे पहले 21 मई, 1952 की राज्य सभा की कार्यवाही में पाया जाता है जब सदन के नेता (श्री एन॰ गोपालस्वामी अय्यंगर) ने वित्त आयोग के पहले प्रतिवेदन और उस पर की गई कार्यवाही संबंधी ज्ञापन की एक प्रति सदन के पटल पर रखी थी।[163] लगभग एक वर्ष पश्चात् पुन: सदन के नेता (श्री सी॰ सी॰ बिस्वास) ने रेल मंत्री, जिन्हें लोक सभा में भाषण देना था, की ओर से रेलवे की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का एक विवरण (रेल बजट) (रेल मंत्री के अभिभाषण के बिना) सदन के पटल पर रखा था।[164]

> सदन के नेता को, 24 नवम्बर, 1952 को सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई थी।[165] कुछ दिन पश्चात् एक सदस्य ने उल्लेख किया था कि सदन के नेता सदन में कदाचित् ही उपस्थित रहे हैं और सदन को इस मामले पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।[166] दो दिन के पश्चात् पुन: सदन के नेता (कार्यकारी नेता श्री सी॰ सी॰ बिस्वास) की अनुपस्थिति का मामला सदन में उठाया गया था। यह बताया गया था कि उस सत्र के दौरान सदन में नेता की उपस्थिति दो घंटे से अधिक की नहीं रही है। संबंधित सदस्य ने यह सुझाव दिया था कि यदि नेता के रूप में कार्य करने वाले सदस्य सदन में उपस्थित होने में समर्थ नहीं हैं तो इसके लिए किसी और सदस्य को नियुक्त किया जाना चाहिये।[167] [11 फरवरी, 1953 को प्रधान मंत्री ने श्री अय्यंगर के निधन का उल्लेख किया था।]

परिपाटी के अनुसार, यदि शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने वाले सदस्यों में से एक सदस्य सदन का नेता हो तो शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए उसे सबसे पहले बुलाया जाता है।

> श्री एन॰ गोपालस्वामी अय्यंगर, श्री सी॰ सी॰ बिस्वास, श्री जयसुखलाल हाथी और श्री प्रणब मुखर्जी जोकि सदन के नेता थे, को शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए सबसे पहले बुलाया गया था। श्री मुखर्जी के मामले में, श्री मुखर्जी द्वारा शपथ लिए जाने के तत्काल पश्चात् सभापति ने प्रधान मंत्री द्वारा सदन के नेता के रूप में उनका नामनिर्देशन किए जाने की घोषणा की थी।[168]

> 24 मई, 1996 को सभापति ने श्री सिकंदर बख्त की सभा के नेता के रूप में नियुक्ति के बारे में घोषणा की। उन्होंने यह भी घोषणा की कि उन्होंने श्री एस॰ बी॰ चव्हाण को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दे दी है। इसके बाद उन्होंने श्री सिकंदर बख्त को शपथ लेने और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया। उनके बाद श्री एस॰ बी॰ चव्हाण को ऐसा करने के लिए बुलाया गया। इसके बाद उस दिन बाकी सदस्यों ने शपथ ली और उस पर हस्ताक्षर किए।[169]

> 23 मार्च, 1998 को सभापति ने घोषणा की कि उन्होंने डा॰ मनमोहन सिंह को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दे दी है और 5 जुलाई, 2004 को सभापति ने यह घोषणा की कि उन्होंने श्री जसवन्त सिंह को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दे दी है और तद्नुसार उन्हें पहले शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाया गया। उनके बाद उस दिन बाकी सदस्यों ने शपथ ली/प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए।[170]

सदन का नेता, सदन में सभापीठ के दाईं ओर सबसे पहले स्थान पर बैठता है। वह पीठासीन अधिकारी के परामर्श के लिए उपलब्ध रहता है। नियमों के अधीन, सभापति सदन में सरकारी कार्य की व्यवस्था के संबंध में,[171] राष्ट्रपति के अभिभाषण,[172] शुक्रवार से भिन्न किसी अन्य दिन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य,[173] अनियत दिन वाले प्रस्तावों[174] पर चर्चा, अल्पकालिक चर्चाओं[175] तथा किसी धन विधेयक[176] पर विचार और उसे लौटाये जाने के लिये दिनों के आवंटन अथवा समय के आवंटन के बारे में सदन के नेता से परामर्श करता है। किसी असाधारण व्यक्ति, राष्ट्रीय नेता या अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के निधन के मामले में सदन को पूरे दिन के लिए स्थगित किए जाने या न किए जाने के बारे में सभापति उससे परामर्श करता है।[177]

> सदन के नेता ने सुझाव दिया था कि सदन (जोकि श्री वी॰ वी॰ गिरि के निधन के कारण पहले दिन स्थगित कर दिया गया था) को उस दिन (अगले दिन) जब स्वर्गीय श्री गिरि का दाह संस्कार किया जाना था, स्थगित कर दिया जाये। सदन इसके लिए सहमत हो गया था।[178]

> अनेक अवसरों पर महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के निधन पर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सदन के नेता ने पहल की है; उदाहरण के लिए डा॰ राजेन्द्र प्रसाद, श्री गोविन्द बल्लभ पंत, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री लाल बहादुर शास्त्री, डा॰ ज़ाकिर हुसेन, श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद, श्री जगजीवन राम और चौधरी चरण सिंह के निधन पर ऐसी पहल की गई थी।[179]

> श्री जवाहरलाल नेहरू, डा॰ ज़ाकिर हुसेन और श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद के निधन पर तो सदन के नेता ने शोक संकल्प भी उपस्थित किए थे।[180]

> एक सदस्य द्वारा यह सुझाव दिए जाने पर कि लोक सभा और राज्य सभा के एक भूतपूर्व सदस्य के निधन पर सदन स्थगित कर दिया जाना चाहिये जैसाकि लोक सभा में किया गया है, सदन के नेता ने श्रद्धांजलि अर्पित करने के विषय में सदन की प्रथा का उल्लेख किया था। सभा स्थगित नहीं की गई थी।[181]

परिपाटी के अनुसार, सदन के नेता से सामान्यत: उस समय परामर्श किया जाता है जब किसी सदस्य

को सदन की सेवा से निलम्बित किए जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया जाये। ऐसे भी उदाहरण हैं जब सदन के नेता ने स्वयं ऐसे प्रस्ताव उपस्थित किए हैं।[182]

सदन का नेता, सदन और उसके सदस्यों के विशेषाधिकार के विषय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1964 से पूर्व यथा विद्यमान प्रक्रिया विषयक नियमों के नियम 167 के अधीन, सदन द्वारा विशेषाधिकार का मामला उठाये जाने की अनुमति दिए जाने के पश्चात् सदन के नेता द्वारा इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किए जाने पर, उक्त मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा जा सकता है। 1964 में नियमों में संशोधन कर दिया गया ताकि सदन के नेता की अनुपस्थिति में कोई और सदस्य भी ऐसा प्रस्ताव उपस्थित कर सके।[183] उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार के मामले विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए सदन के नेता ने 9 सितम्बर, 1966, 5 जून, 1967 और 7 सितम्बर, 1970 को ऐसे प्रस्ताव उपस्थित किए थे।[184] दर्शक दीर्घा से सदन में इश्तहार फैंकने वाले[185] या वहां से नारे लगाने वाले[186] या वहां से सदन में चप्पल फैंकने वाले[187] व्यक्तियों द्वारा सदन की अवमानना किए जाने पर सदन के नेता ने इस आशय के प्रस्ताव भी उपस्थित किए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अधीन ऐसे सदस्य का स्थान जो सदन की अनुमति के बिना निरंतर साठ दिनों या इससे अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहा है, सदन के नेता द्वारा प्रस्ताव उपस्थित किए जाने पर रिक्त घोषित कर दिया जाता है। तथापि, वइ इस निमित्त अपने कृत्यों को सभा के किसी सदस्य को प्रत्यायोजित कर सकता है।[188]

> श्री बरजिन्दर सिंह हमदर्द, जिन्होंने साठ दिनों से अधिक की अवधि के लिए सभा की सभी बैठकों से स्वयं को अनुपस्थित रखा, के स्थान को भारत के संविधान के अनुच्छेद 101 के खण्ड (4) के अनुसार 21 दिसम्बर, 2002 को रिक्त घोषित कर दिया गया। श्री हमदर्द के मामले में, सदन के नेता ने तत्कालीन संसदीय कार्य मंत्री श्री प्रमोद महाजन को अपने कृत्यों को प्रत्यायोजित कर दिया था।[189]

सदन का नेता 1981 से सदैव कार्य मंत्रणा समिति का सदस्य रहा है। यद्यपि वर्तमान प्रथा यह है कि अगले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य की घोषणा संसदीय कार्य मंत्रालय के किसी मंत्री द्वारा की जाती है तथापि राज्य सभा में छठे दशक के आरंभ में ऐसे बहुत-से उदाहरण रहे हैं जब सरकारी कार्य की घोषणा या तो स्वयं सदन के नेता द्वारा की गई थी या स्पष्ट रूप से सदन के नेता की ओर से संसदीय कार्य मंत्री द्वारा की गई थी।[190] सदन के नेता को सामान्य प्रयोजन समिति के लिए, उसके एक सदस्य के रूप में भी नामनिर्देशित किया जाता है।

सदन का नेता सदन के कार्य से संबंधित प्रक्रियात्मक मामलों को निपटाता है और कोई कठिनाई उत्पन्न होने पर सदन को सलाह देता है।

> सदन के नेता (श्री एन॰ गोपालस्वामी अय्यंगर) ने राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव से संबंधित संशोधन की परिधि को स्पष्ट करने के लिए हस्तक्षेप किया था।[191]
>
> राज्य सभा से निवृत्त होने पर सदन के सदस्य न रहने के पश्चात् भी तीन मंत्रियों को मंत्री बनाये रखने के संबंध में लम्बी चर्चा हुई थी। चर्चा के दौरान, कुछ सदस्यों ने इस विषय में अन्तर्ग्रस्त राजनीतिक नैतिकता के बारे में एक मुद्दा उठाया था। सदन के नेता ने आश्वासन दिया था कि वह सदस्यों की भावनाओं और विचारों को प्रधान मंत्री तक पहुंचा देंगे।[192]
>
> विपक्ष के नेता को, जिसे पहली बार मान्यता प्रदान की गई थी, सुविधाएं दिए जाने के संबंध में राज्य सभा में पूरे दिन चर्चा चलती रही। सदन के नेता ने सदस्यों के विचारों को सरकार तक पहुंचाने और शीघ्र निर्णय लेने का वचन दिया था।[193]

जब कुछ सदस्यों ने प्रश्नों के समय को निलम्बित किए जाने का प्रस्ताव उपस्थित करने का प्रयत्न किया था तब सदन के नेता (श्री एस॰ बी॰ चव्हाण) ने सदस्यों से अनुरोध किया था कि वे अयोध्या मसले पर पिछले दिन की चर्चा को ध्यान में रखते हुए इसके लिए जोर न दें।[194]

जब एच॰ एस॰ डी॰ सौदे से संबंधित संगत फाइलों को उपलब्ध न कराकर लोक उपक्रम समिति के कार्य में बाधा डाले जाने के आधार पर सरकार के विरुद्ध विशेषाधिकार का मामला लाया गया था और सभापति ने सुझाव दिया था कि समिति में राज्य सभा की सदस्यता के संबंध में विद्यमान विसंगतियों को दूर करने के लिए नियम बनाया जाये तब सदन के नेता ने कहा था कि इस संबंध में एक परस्पर स्वीकार्य संतोषजनक समाधान का पता लगाया जा सकता है। इससे यह मामला शांत हो गया था।[195]

जब सदस्यों ने विशेष उल्लेख के मामलों के उत्तर विलम्ब से मिलने के बारे में शिकायत की थी तब सदन के नेता ने उन्हें यथाशीघ्र उत्तर दिलवाने में अपने सहयोग के बारे में आश्वासन दिया था।[196]

जब सदस्यों ने यह मांग की थी कि राज्य सभा में भी सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति होनी चाहिये तब सदन के नेता ने इस सुझाव पर अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।[197]

जब भी सामान्यत: राज्य सभा की समितियों का वार्षिक पुनर्गठन किया जाता है तब सदन का नेता राज्य सभा में दलों/गुटों के बीच समिति की सदस्यता/अध्यक्षता के आवंटन के बारे में निर्णय लेने के लिए अनेक नेताओं की औपचारिक बैठक बुलाकर, इस बारे में पहल करता है। इससे विभिन्न समितियों के लिए सदस्यों के नामनिर्देशन/अध्यक्षों की नियुक्ति का निर्णय लेने के मामले में सभापति का कार्य आसान हो जाता है।

सदन का नेता अपने दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों में अपने दल के नेता या सरकार के उस संबंधित मंत्री, जिसके साथ सदन के नेता का पद जुड़ा हुआ है, के रूप में कार्य करता है।

1952 से 1959 के वर्षों में सदन के नेता ने धन्यवाद के प्रस्तावों से संबंधित वाद-विवादों के उत्तर दिए थे। 1961 में विधि मंत्री और 1964 में गृह मंत्री ने सदन के नेता की ओर से, जो अस्वस्थ थे, उत्तर दिया था।

1979 और 1991 में सदन के नेता (क्रमश: श्री के॰ सी॰ पंत और श्री यशवन्त सिन्हा) ने सरकार के त्याग-पत्र के बारे में सदन को सूचित किया था और सभापीठ से सदन को क्रमश: अनिश्चित दिन तक और उस दिन के लिए स्थगित किये जाने का अनुरोध किया था।[198]

15 अप्रैल, 1999 को उद्योग मंत्री और सदन के नेता श्री सिकंदर बख्त ने एक सुझाव दिया कि 15, 16 और 17 अप्रैल, 1999 को लोक सभा में विश्वास प्रस्ताव पर हो रही चर्चा के दृष्टिगत, सभा को सोमवार, 19 अप्रैल, 1999 तक स्थगित किया जा सकता है और विपक्ष के नेता डा॰ मनमोहन सिंह इस प्रस्ताव से सहमत हो गए थे। सभापति ने, सभा की राय जानने के बाद, सभा को सोमवार, 19 अप्रैल, 1999 तक के लिए स्थगित कर दिया।[199]

अवसर की मांग के अनुसार सदन का नेता, समूचे सदन के प्रवक्ता और प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। उसकी इस भूमिका के अवसर मुख्यत: तब आते हैं जब समूचा सदन किसी विषय पर या लोक सभा के संबंध में अपनी स्थिति को परिभाषित करने या किसी घटना या अवसर आदि पर विचार अथवा भावना व्यक्त करने की इच्छा प्रकट करे।

बजट पर सबसे पहले राज्य सभा में चर्चा किए जाने के संबंध में लोक सभा में आपत्ति की गई थी। राज्य सभा में इस विषय पर चर्चा के दौरान सदन के नेता (श्री एम॰ सी॰ छागला) ने स्थिति स्पष्ट की थी और यह कहते हुए कि संविधान के अधीन राज्य सभा को बजट पर चर्चा करने का उतना ही अधिकार है जितना कि लोक सभा को है, उन्होंने सदन से अपील की थी कि सदन लोक सभा के साथ मतभेद या टकराव से बचने का प्रयत्न करे।[200]

इसी तरह, राज्य सभा के बजट प्राक्कलनों की संवीक्षा के प्रस्ताव पर सदन के नेता (श्री एम॰ सी॰ छागला) ने उन सिद्धान्तों को स्पष्ट किया था जिन्हें इस निमित्त विद्यमान प्रक्रिया में कोई परिवर्तन किए जाने पर, ध्यान में रखा जाना चाहिये। उन्होंने इस मामले में राज्य सभा की इच्छा को लोक सभा अध्यक्ष तक पहुंचाने की पेशकश की थी।[201]

सदन के नेता ने निम्नलिखित संकल्प उपस्थित किए थे:

(1) कोलम्बो में हुए हमले में प्रधान मंत्री की सुरक्षा के बारे में राहत की भावना व्यक्त करने वाला;[202]

(2) असम में हुई हत्याओं की निन्दा करने वाला;[203]

(3) बाबरी मस्जिद गिराये जाने और उसे अपवित्र किए जाने की निन्दा करने वाला;[204]

(4) तालिबान शासन द्वारा बामियान (अफगानिस्तान) में बुद्ध की प्रतिमाओं और बौद्ध-स्थलों को नष्ट करने से संबंधित;[205]

(5) कथित तौर पर वी॰ एच॰ पी॰ और बजरंग दल के व्यक्तियों की उत्तेजित भीड़ द्वारा उड़ीसा के राज्य विधान-मंडल की सम्पदा और परिसर पर धावा बोलने से संबंधित।[206]

इस तरह सदन का नेता सदन के भीतर व्यापक भूमिका निभाता है। अत: सदन स्वभावत: उसके प्रति श्रद्धा और स्नेह रखता है और सर्वसम्मति से सदैव उसकी गरिमा को बनाये रखता है।

उदाहरण के लिए, 1952 में सदन के तत्कालीन नेता श्री एन॰ गोपालस्वामी अय्यंगर ने अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगी थी क्योंकि वह अस्वस्थ थे। जहां एक सदस्य का यह विचार था कि उन्हें सदन की अनुमति की आवश्यकता नहीं, वहीं एक और सदस्य ने ''सदन के नेता के शीघ्र स्वस्थ होने की'' शुभकामनाएं व्यक्त की थीं।[207]

बाद में सदन के नेता श्री गोविन्द बल्लभ पंत के मामले में सभापति ने प्रश्नों के समय के पश्चात् यह कहा था: ''श्री पंत, आपकी हाल की बीमारी के पश्चात् आपको सदन के नेता के रूप में पुन: अपने स्थान पर देखकर मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करना चाहूंगा। मैं आशा करता हूं कि आप स्वयं पर अधिक दबाव नहीं डालेंगे।'' इस पर सदन के नेता ने सभापति को धन्यवाद दिया था।[208]

जब प्रसिद्ध आयकर (संशोधन) विधेयक के मामले में, सदन के नेता (श्री सी॰ सी॰ बिस्वास) को लोक सभा में उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था तब राज्य सभा में सदन के नेता को यह निदेश देते हुए एक संकल्प पारित किया गया था कि वह किसी भी हैसियत से लोक सभा में स्वयं उपस्थित न हों।[209]

एक बार, एक सदस्य ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के लिए निर्वाचन के प्रस्ताव पर एक संशोधन उपस्थित किया था ताकि इस प्रयोजनार्थ राज्य सभा की एक पृथक् समिति का गठन किया जा सके और उस सदस्य ने यह कहा था कि यह संशोधन सरकार द्वारा इस निमित्त दिये गये आश्वासन के अनुरूप है। सदन के नेता ने इस बात से इन्कार किया था कि ऐसा कोई आश्वासन दिया गया है। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी: ''सदन के नेता ने अभी-अभी कहा है कि सरकार की ओर से ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया गया है और आपको इसे सही समझना चाहिए...।''[210]

राज्य सभा में 1952 से निम्नलिखित व्यक्ति सदन के नेता रहे हैं:

नाम	अवधि
1. श्री एन॰ गोपालस्वामी अय्यंगर	मई, 1952 से फरवरी, 1953
2. श्री चारू चन्द्र बिस्वास	फरवरी, 1953 से नवम्बर, 1954
3. श्री लाल बहादुर शास्त्री	नवम्बर, 1954 से मार्च, 1955

	नाम	अवधि
4.	श्री गोविन्द बल्लभ पंत	मार्च, 1955 से फरवरी, 1961
5.	हाफिज़ मोहम्मद इब्राहिम	फरवरी, 1961 से अगस्त, 1963
6.	श्री वाई॰ बी॰ चव्हाण	अगस्त से दिसम्बर, 1963
7.	श्री जयसुखलाल हाथी	फरवरी से मार्च, 1964
8.	श्री मोहम्मद अली करीम छागला	मार्च, 1964 से नवम्बर, 1967
9.	श्री जयसुखलाल हाथी	नवम्बर, 1967 से नवम्बर, 1969
10.	श्री कोदारदास कालीदास शाह	नवम्बर, 1969 से मई, 1971
11.	श्री उमा शंकर दीक्षित	मई, 1971 से दिसम्बर, 1975
12.	श्री कमलापति त्रिपाठी	दिसम्बर, 1975 से मार्च, 1977
13.	श्री लाल कृष्ण आडवाणी	मार्च, 1977 से अगस्त, 1979
14.	श्री के॰ सी॰ पंत	अगस्त, 1979 से जनवरी, 1980
15.	श्री प्रणब मुखर्जी	जनवरी, 1980 से जुलाई, 1981 और अगस्त, 1981 से दिसम्बर, 1984
16.	श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह	दिसम्बर, 1984 से अप्रैल, 1987
17.	श्री नारायण दत्त तिवारी	अप्रैल, 1987 से जून, 1988
18.	श्री पी॰ शिवशंकर	जुलाई, 1988 से दिसम्बर, 1989
19.	श्री एम॰ एस॰ गुरुपदस्वामी	दिसम्बर, 1989 से नवम्बर, 1990
20.	श्री यशवन्त सिन्हा	दिसम्बर, 1990 से जून, 1991
21.	श्री एस॰ बी॰ चव्हाण	जुलाई, 1991 से अप्रैल, 1996
22.	श्री सिकंदर बख्त	20 मई, 1996 से 31 मई, 1996
23.	श्री इन्द्र कुमार गुजराल	जून, 1996 से नवम्बर, 1996
24.	श्री एच॰ डी॰ देवेगौड़ा	नवम्बर, 1996 से अप्रैल, 1997
25.	श्री इन्द्र कुमार गुजराल	अप्रैल, 1997 से मार्च, 1998
26.	श्री सिकंदर बख्त	मार्च, 1998 से अक्तूबर, 1999
27.	श्री जसवंत सिंह	अक्तूबर, 1999 से मई, 2004
28.	डा॰ मनमोहन सिंह	जून, 2004 से अभी तक

विपक्ष का नेता

सदन के नेता की भांति विपक्ष के नेता का पद भी इंग्लैंड में परम्परा से आरम्भ हुआ है और इसके विधान या सदन के नियमों के अनुसार कोई पदीय कृत्य नहीं होते हैं।[211] तथापि, विपक्ष के नेता का कार्य सदन के नेता के कार्य की तरह उतना कठिन नहीं होता है फिर भी यह पर्याप्त लोक महत्त्व का होता है। वस्तुत: यह इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि उसे इंग्लैंड और भारत दोनों में ही संचित निधि से वेतन, आदि का भुगतान किया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि विपक्ष लोकतांत्रिक सरकार का एक आवश्यक अंग होता है।[212] विपक्ष से प्रभावी आलोचना की अपेक्षा की जाती है।[213] अत: यह ठीक ही कहा गया है कि विपक्ष संसद् का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग होता है। सरकार शासन करती है और विपक्ष आलोचना करता है।[214] इस तरह से दोनों के अपने-अपने कार्य और अधिकार हैं।

विपक्ष का कार्य सरकार और मंत्रियों की आलोचना करना है। विरोध करना इसका दायित्व है। यह दायित्व ही भ्रष्टाचार और दोषपूर्ण प्रशासन पर मुख्य नियंत्रण होता है। यह वैयक्तिक अन्याय को रोकने का भी एक तरीका है। यह दायित्व सरकार से कम महत्त्व का नहीं है।[215] वस्तुत: विपक्ष और सरकार समझौते से परस्पर कार्य करते हैं। अल्पसंख्यक इससे सहमति व्यक्त करते हैं कि बहुसंख्यक शासन करें और बहुसंख्यक इस पर सहमत हैं कि अल्पसंख्यकों को आलोचना करनी चाहिए।[216] विपक्ष को इस प्रकार का व्यवधान डालने का कोई अधिकार नहीं है जिससे संसद् में कोई कार्य सम्पन्न न हो सके।[217] यदि कोई सरकार विपक्ष के अधिकारों में कमी करती है, तो ऐसा करना संसदीय भावना पर दलीय भावना की जीत का सुस्पष्ट प्रमाण होगा।[218] सरकार द्वारा विपक्ष के अधिकारों के प्रति निर्बाध सम्मान प्रदर्शित करना उसकी दृढ़ संसदीय निष्ठा का **प्रथम दृष्टया** प्रमाण होता है।[219] परस्पर सहिष्णुता के अभाव में संसदीय सरकार की प्रक्रिया भंग हो जायेगी।[220]

संसदीय लोकतन्त्र में विपक्ष के महत्त्व को देखते हुए विपक्ष के नेता का पद वास्तव में उत्तरदायित्व का पद है। वह अन्य बातों के साथ-साथ अल्पसंख्यकों के अधिकारों के अतिक्रमण पर नज़र रखता है, सरकार द्वारा संसदीय आलोचना के बिना ही कार्य सम्पन्न करने का प्रयास करने पर बहस कराने की मांग करता है। उसे प्राय: अपने स्थान पर होना चाहिए और एक कुशल सांसद के सभी तौर-तरीके आने चाहिए और सदन के नियमों के अन्तर्गत सुलभ सभी अवसरों की जानकारी होनी चाहिए।[221]

राज्य सभा में 1969 तक सही और मान्य अर्थों में विपक्ष का कोई नेता नहीं था, क्योंकि किसी भी दल के सदस्यों की अपेक्षित संख्या सदन की कुल सदस्य-संख्या के दसवें भाग अर्थात्, पच्चीस सदस्य जोकि सदन की ''गणपूर्ति'' के लिए भी अपेक्षित संख्या है, नहीं थी। तब तक सदस्यों की संख्या की दृष्टि से सबसे बड़े विरोधी दल के नेता को उसे बिना कोई औपचारिक मान्यता, पद या विशेषाधिकार प्रदान किये विपक्ष के नेता के रूप में पुकारे जाने की परिपाटी थी। 18 दिसम्बर, 1969 को कांग्रेस (ओ) को, जिसके दो सौ चालीस सदस्यों वाले सदन में उनतालीस सदस्य थे, विरोधी दल के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी और उसके नेता, श्री श्याम नन्दन मिश्र को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी। इसके तत्काल बाद उन्हें सभापति, प्रधान मंत्री और राज्य सभा में दलों/समूहों के अन्य नेताओं द्वारा बधाइयां दी गई थीं।[222] उन्हें सभापीठ के बाईं ओर उपसभापति के स्थान के निकट पहली पंक्ति में स्थान आवंटित किया गया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विभाजन के पश्चात् विरोधी दल समूह में सबसे बड़े दल के नेता (श्री श्याम नन्दन मिश्र) ने 16 नवम्बर, 1969 को सभापति से यह अनुरोध किया कि राज्य सभा में उनके समूह के सदस्यों को पृथक स्थान आवंटित किये जाने चाहिए। वह उपसभापति के स्थान पर बैठ गये जोकि उपसभापति द्वारा त्याग-पत्र दे

दिये जाने के कारण रिक्त था। श्री मिश्र के उक्त स्थान पर बैठ जाने पर कुछ सदस्यों ने आपत्ति की। सभापति ने यह व्यवस्था दी कि स्थान आवंटित किये जाने तक नये समूह के नेता और उसके सदस्य अपने-अपने स्थानों से बोलें, क्योंकि पुन: आवंटन में समय लगेगा। उस दिन सभा मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 54 मिनट पर मध्याह्न पश्चात् 2 बजे तक के लिए स्थगित कर दी गई थी। सभा के पुन: समवेत होने पर उपसभाध्यक्ष ने यह घोषणा की कि सभापति इस मामले पर विचार कर रहे हैं और उन्होंने सभा को एक घंटे के लिए स्थगित कर दिया। सभा के पुन: समवेत होने पर सभापति ने घोषणा की कि नेताओं और अन्य सदस्यों को स्थानों का पुन: आवंटन कर दिया गया है और वह व्यवस्था कल से प्रभावी होगी। तत्पश्चात् विपक्ष के नेता ने नये स्थान से अपना भाषण दिया।[223]

मान्यता प्रदान किये जाने के पश्चात् यह मांग की गई कि विपक्ष के नेता की प्रसुविधाओं और विशेषाधिकारों आदि का निर्धारण किया जाना चाहिए। सरकार की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि इन पर पहले से ही विचार किया जा रहा है और उन्हें अन्तिम रूप दिया जायेगा और शीघ्र ही घोषणा की जायेगी। 14 मई, 1970 को सभा में पूरे दिन इस मुद्दे पर विचार-विमर्श होता रहा और इस मामले में सरकार के निर्णय के बारे में जानकारी मांगी गई। सदन के नेता ने सिर्फ इतना ही आश्वासन दिया कि वह सरकार को सदस्यों के विचारों से अवगत करा देंगे और इस बारे में शीघ्रतापूर्वक निर्णय लेने के लिए आग्रह करेंगे। श्री श्याम नन्दन मिश्र मार्च, 1971 तक विपक्ष के नेता के पद पर बने रहे और उसके बाद लोक सभा के लिए चुन लिये जाने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। उनके बाद श्री एम॰ एस॰ गुरुपदस्वामी विपक्ष के नेता बने। हालांकि सभा में इस आशय की कोई औपचारिक घोषणा नहीं की गई थी, लेकिन सभा की कार्यवाही में उनका इसी प्रकार से उल्लेख किया गया था।[224] वह अप्रैल, 1972 तक इस पद पर बने रहे। तत्पश्चात्, मार्च, 1977 तक राज्य सभा में किसी भी विरोधी दल के सदस्यों की संख्या मान्यता प्रदान किये जाने के लिए पर्याप्त नहीं थी और उक्त अवधि के दौरान विपक्ष का कोई मान्यता-प्राप्त नेता नहीं था।

संसद् में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 द्वारा विपक्ष के नेता पद को सांविधिक मान्यता और दर्जा प्राप्त किया गया है। उक्त अधिनियम में विरोधी दल के नेता को संसद् के किसी सदन, ''राज्य सभा या लोक सभा, यथास्थिति, के एक ऐसे सदस्य के रूप में परिभाषित किया गया है जोकि उस समय उस सदन में सबसे अधिक सदस्य-संख्या वाले विरोधी दल का नेता हो और जिसे राज्य सभा के सभापति या लोकसभाध्यक्ष, यथास्थिति, द्वारा उसे उस रूप में मान्यता प्रदान की गई हो।''[225] इस प्रकार से विपक्ष के नेता को तीन शर्तें पूरी करनी होती हैं, अर्थात् वह सदन का सदस्य होना चाहिए, राज्य सभा में सर्वाधिक सदस्य-संख्या वाले विरोधी दल का नेता होना चाहिए और उसे सभापति द्वारा इस प्रकार की मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। यह भी स्पष्ट कर दिया जाता है कि समान सदस्य-संख्या वाले दो या उससे अधिक विरोधी दलों के होने पर सभापति उन दलों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए ऐसे दलों के किसी भी नेता को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान करता है और इस प्रकार की मान्यता अंतिम और निश्चायक होती है।[226] किसी नेता को मान्यता प्रदान किये जाने या उसके नेता न रहने के उपरान्त राजपत्र में अधिसूचना जारी की जाती है। यह इस तथ्य का निश्चायक प्रमाण होता है कि सम्बद्ध सदस्य राजपत्र में निर्दिष्ट तिथि से विपक्ष का नेता बन गया है अथवा नहीं रहा है।[227]

इस अधिनियम के अन्तर्गत विरोधी दल के नेता को बारह हजार रुपये प्रतिमाह वेतन, पांच सौ रुपये दैनिक भत्ता, अपने सम्पूर्ण कार्यकाल के दौरान प्रतिदिन, दस हजार रुपये प्रतिमाह निर्वाचन-क्षेत्र भत्ता और दो हजार रुपये प्रतिमाह सत्कार भत्ता, की गई यात्राओं के लिए यात्रा-भत्ता, नि:शुल्क सुसज्जित आवास और टेलीफोन, सचिवीय और चिकित्सा सुविधाएं प्राप्त होती हैं। विरोधी दल का नेता, यदि सचिवालय द्वारा चालक सहित वाहन सुविधा नहीं दी गई हो, तो तीन हजार रुपये प्रतिमाह वाहन भत्ता पाने का भी हकदार है। इन पर व्यय होने वाली राशि राज्य सभा सचिवालय के बजटीय अनुदानों से प्रदान की जा रही है।

ऊपर उल्लिखित उपबंध के अधिनियमन के पश्चात् अनेक अवसरों पर राज्य सभा में विरोधी दल के नेता को मान्यता प्रदान करने या उसकी मान्यता वापस लेने के लिए उक्त उपबंध को प्रयुक्त किया गया है।

> 29 मार्च, 1977 को राज्य सभा के तत्कालीन मुख्य सचेतक, श्री ओम मेहता ने यह सूचित किया कि कांग्रेस दल द्वारा श्री कमलापति त्रिपाठी को राज्य सभा में विपक्ष का नेता निर्वाचित किया गया है। उस दल के सदस्यों की संख्या के आधार पर सभापति ने उन्हें विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की और 30 मार्च, 1977 को सभा में इस आशय की घोषणा की गई थी।[228]
>
> 10 जनवरी, 1978 को कांग्रेस दल के मुख्य सचेतक, श्री बिपिन पाल दास ने यह सूचित किया कि श्री कमलापति त्रिपाठी (दल में विभाजन के परिणामस्वरूप) उस दल के नेता नहीं रहे हैं। इस संदर्भ में यह प्रश्न उठा कि क्या सभापति को विपक्षी दल के नेता के रूप में किसी सदस्य की मान्यता को समाप्त करने की शक्ति प्राप्त है और यदि हां, तो किस तिथि से। अत: इस मामले को परामर्श हेतु विधि मंत्रालय के पास भेजा गया था। उक्त मंत्रालय ने निम्नलिखित परामर्श दिया था:
>
> > हालांकि इस अधिनियम की धारा 2 में सर्वाधिक सदस्यों वाले विरोधी दल के नेता के रूप में किसी सदस्य को मान्यता प्रदान किये जाने का ही उल्लेख किया गया है, तथापि, मान्यता समाप्त करने की शक्ति इसमें अन्तर्निहित है और यह मान्यता प्रदान करने की शक्ति में ही सन्निहित है। इस समय विचाराधीन मामले के अतिरिक्त ऐसे अविवादास्पद अवसर भी उत्पन्न हो सकते हैं जैसे किसी व्यक्ति का राज्य सभा का सदस्य न रह पाना, मृत्यु हो जाना या दल के नेता के पद से त्याग-पत्र दे देना... चूंकि धारा 9 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने की तिथि और किसी व्यक्ति के विरोधी दल का नेता बनने या नेता पद पर न बने रहने की तिथि में समय का अन्तराल हो सकता है, अत: अधिसूचना में किसी पिछली तिथि का उल्लेख करने पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यदि सभापति इस बात से संतुष्ट हैं कि श्री कमलापति त्रिपाठी वास्तव में 10 जनवरी या किसी अन्य तिथि से सर्वाधिक सदस्यों वाले दल के नेता नहीं रहे हैं, तो वह इस आशय के निष्कर्ष पर पहुंच सकता है। लेकिन यदि इस मामले पर विवाद उत्पन्न होने की संभावना हो, तो मान्यता को उस तिथि से समाप्त करने से, जिस तिथि को सभापति उक्त निष्कर्ष पर पहुंचा हो, विवाद उत्पन्न होने की संभावना कम हो जायेगी।[229]
>
> स्थिति का पता लगाने के पश्चात् सभापति ने यह घोषणा की कि श्री त्रिपाठी 15 फरवरी, 1978 से राज्य सभा में विपक्ष के नेता नहीं रहे हैं।[230] इसके पश्चात् श्री बिपिन पाल दास से प्राप्त सूचना के आधार पर उस दल के नेता, श्री भोला पासवान शास्त्री को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई।[231]
>
> इस दौरान राज्य सभा में उस दल की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। कांग्रेस (आई) दल सबसे बड़े विरोधी दल के रूप में उभरकर सामने आया। श्री कमलापति त्रिपाठी को पुन: विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई और 23 मार्च, 1978 को श्री भोला पासवान शास्त्री की मान्यता समाप्त कर दी गई।[232] श्री त्रिपाठी 2 अप्रैल, 1978 को राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त होने पर विपक्ष के नेता नहीं रहे। उनके पुन: निर्वाचन के पश्चात् 18 अप्रैल, 1978 को उन्हें पुन: विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी।[233] वह लोक सभा के लिए निर्वाचित हो जाने और राज्य सभा का सदस्य न रहने पर 8 जनवरी, 1980 तक इस पद पर बने रहे।[234]
>
> जनता पार्टी के श्री लाल कृष्ण आडवाणी को 21 जनवरी, 1980 को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी क्योंकि यह पार्टी सदस्यों की संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी पार्टी थी।[235] तथापि, उन्होंने 7 अप्रैल, 1980 को इस पद से त्याग-पत्र दे दिया था और इस तरह वह उस तारीख से विपक्ष के नेता नहीं रहे थे।[236]

7 अप्रैल, 1980 से दिसम्बर, 1989 तक पुन: राज्य सभा में विपक्ष का कोई नेता नहीं था, क्योंकि किसी भी दल के पास मान्यता के लिए अपेक्षित सदस्य-संख्या अर्थात् पच्चीस सदस्य नहीं थे। कांग्रेस (आई) संसदीय दल के श्री पी॰ शिव शंकर को 18 दिसम्बर, 1989 को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी।[237] वह 2 जनवरी, 1991 तक इस पद पर बने रहे।[238]

नवम्बर, 1990 में श्री चन्द्रशेखर ने कांग्रेस (आई) के समर्थन से सरकार बनाई। विपक्ष के नेता के रूप में श्री शिव शंकर की स्थिति के संबंध में 27 दिसम्बर, 1990 को राज्य सभा में एक मामला उठाया गया, क्योंकि उनकी पार्टी सत्ताधारी पार्टी का समर्थन कर रही थी।[239] सभापति ने इस संबंध में महान्यायवादी का विचार मांगा, जिसका मुख्य अंश यह था: ''...संसदीय परिपाटी और संसद् में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 के उपबंधों के आलोक में इस समय विद्यमान विधि के अनुसार विपक्ष के नेता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और कांग्रेस (आई) का नेता विपक्ष का नेता बना रहेगा।'' सदन में महान्यायवादी के विचार को पढ़ते हुए सभापति ने यह भी घोषणा की कि कांग्रेस (आई) ने विपक्ष के नेता के पद को छोड़ दिया है और वह पद रिक्त हो गया है।[240]

इस बीच, उपचुनाव में उड़ीसा से एक सदस्य के निर्वाचित होने से 19 मार्च, 1991 को जनता दल की सदस्य-संख्या चौबीस से बढ़कर पच्चीस हो गई अत: उस दल के नेता, श्री एम॰ एस॰ गुरुपदस्वामी विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने के पात्र हो गये। तथापि, श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व वाली सरकार के त्याग-पत्र देने से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या कांग्रेस (आई) सदस्य-संख्या की दृष्टि से सबसे बड़े विरोधी दल के रूप में अपनी स्थिति और विपक्ष के नेता के रूप में अपने नेता (श्री शिव शंकर) की स्थिति को पुन: प्राप्त कर सकती है। इससे पहले कि इन दोनों दलों के दावे का निर्णय हो सके, आम चुनाव के फलस्वरूप कांग्रेस (आई) पार्टी सत्ताधारी पार्टी बन गई; राज्य सभा में जनता दल की सदस्य-संख्या पच्चीस ही रही। अत: श्री एम॰ एस॰ गुरुपदस्वामी को 28 जून, 1991 से विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई।[241] (इस तरह, जनवरी और जून, 1991 के बीच विपक्ष का कोई नेता नहीं था)।

श्री गुरुपदस्वामी इस पद पर 21 जुलाई, 1991 तक बने रहे, इसके पश्चात् उनका स्थान श्री एस॰ जयपाल रेड्डी ने ले लिया, जिन्हें श्री गुरुपदस्वामी से प्राप्त पत्र के अनुसार राज्य सभा में जनता दल के नेता के रूप में निर्वाचित किया गया था।[242]

2 अप्रैल, 1992 को राज्य सभा से जनता दल के दो सदस्यों के निवृत्त होने से राज्य सभा में जनता दल की सदस्य-संख्या घटकर तेईस रह गई। अत: यह दल और इसके नेता श्री एस॰ जयपाल रेड्डी, सदस्य-संख्या की दृष्टि से क्रमश: सबसे बड़े विरोधी दल और विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने की योग्यता नहीं रखते थे। श्री रेड्डी ने, तद्नुसार, सभापति को सूचित किया, जिन्होंने 29 जून, 1992 से विपक्ष के नेता के रूप में श्री रेड्डी की मान्यता को रद्द करने का निर्णय लिया।[243]

भारतीय जनता पार्टी उनतीस सदस्यों के साथ सदस्य-संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बन गई और संसद् में भारतीय जनता पार्टी के नेता (श्री लाल कृष्ण आडवाणी) से प्राप्त पत्र के अनुसार राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के नेता, श्री सिकंदर बख्त को 7 जुलाई, 1992 से विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई।[244]

संक्षेप में, निम्नलिखित सदस्य राज्य सभा में विपक्ष के नेता रहे हैं:

1.	श्री श्याम नन्दन मिश्र	दिसम्बर, 1969 से मार्च, 1971 तक
2.	श्री एम॰ एस॰ गुरुपदस्वामी	मार्च, 1971 से अप्रैल, 1972 तक
3.	श्री कमलापति त्रिपाठी	30 मार्च, 1977 से 15 फरवरी, 1978 तक
4.	श्री भोला पासवान शास्त्री	24 फरवरी, 1978 से 23 मार्च, 1978 तक
5.	श्री कमलापति त्रिपाठी	23 मार्च, 1978 से 2 अप्रैल, 1978 तक और 18 अप्रैल, 1978 से 8 जनवरी, 1980 तक
6.	श्री लाल कृष्ण आडवाणी	21 जनवरी, 1980 से 7 अप्रैल, 1980 तक

7.	श्री पी॰ शिव शंकर	18 दिसम्बर, 1989 से 2 जनवरी, 1991 तक
8.	श्री एम॰ एस॰ गुरुपदस्वामी	28 जून, 1991 से 21 जुलाई, 1991 तक
9.	श्री एस॰ जयपाल रेड्डी	22 जुलाई, 1991 से 29 जून, 1992 तक
10.	श्री सिकन्दर बख्त	7 जुलाई, 1992 से 10 अप्रैल, 1996 तक और 10 अप्रैल, 1996 से 23 मई, 1996 तक
11.	श्री एस॰ बी॰ चव्हाण	23 मई, 1996 से 1 जून, 1996 तक
12.	श्री सिकन्दर बख्त	1 जून, 1996 से 19 मार्च, 1998 तक
13.	डा॰ मनमोहन सिंह	21 मार्च, 1998 से 21 मई, 2004 तक
14.	*श्री जसवन्त सिंह	3 जून, 2004 से 4 जुलाई, 2004 तक 5 जुलाई 2004 से आगे

मंत्री

संविधान में राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् का उपबन्ध किया गया है जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होता है और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करता है।[245] प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री की सलाह पर करता है।[246] प्रधान मंत्री की मृत्यु या उसके त्याग-पत्र देने पर सम्पूर्ण मंत्रि-परिषद् भंग हो जाती है। तथापि, त्याग-पत्र दिये जाने की स्थिति में, राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों से वैकल्पिक व्यवस्था होने तक अपने पदों पर बने रहने के लिए कहता है। मंत्रि-परिषद् में सभी श्रेणियों के मंत्री होते हैं चाहे वे मंत्रिमंडल स्तर के हों या राज्य मंत्री या उप मंत्री हों।[247] मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद धारण करते हैं।[248] मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।[249] इसका यह आशय है कि मंत्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव केवल लोक सभा में ही, न कि राज्य सभा में, उपस्थित किया जा सकता है। इसलिए राज्य सभा नियमों में इस प्रकार का कोई प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए कोई उपबंध नहीं है और न ही नियमों में कोई ऐसा स्थगन प्रस्ताव, जिसे निन्दा प्रस्ताव समझा जाता हो, उपस्थित किये जाने का कोई उपबन्ध है। इस प्रयोजनार्थ केवल लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में ही उपबंध किये गये हैं।[250]

जब किसी नये मंत्री को नियुक्त किया जाता है और उसे शपथ दिलाई जाती है, तब प्रधान मंत्री या उनकी अनुपस्थिति में सदन के नेता सभा में यथाशीघ्र उसका परिचय कराते हैं। सामान्यत: मंत्री का परिचय प्रश्नों के समय के आरम्भ में कराया जाता है। तथापि, अनेक अवसरों पर सभा में मंत्रियों का परिचय दिन में बाद में किसी समय कराया गया है या परिचय के प्रथम दिन उनमें से किसी के उपस्थित न रहने पर सभा में अगले दिन उसका परिचय कराया गया है।

*4 जुलाई, 2004 को राज्य सभा के सदस्य के रूप में अपने कार्यकाल की समाप्ति के परिणामस्वरूप, श्री जसवन्त सिंह विपक्ष के नेता भी नहीं रहे। राज्य सभा के लिए उनके पुनर्निर्वाचन के बाद, सभापति द्वारा उन्हें 5 जुलाई, 2004 से राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में पुन: मान्यता प्रदान कर दी गई।

एक मंत्री द्वारा प्रश्न और उस पर पूछे गये अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर दिये जाने के पश्चात् एक सदस्य ने यह कहा, ''ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रश्नों का उत्तर किसी अपरिचित व्यक्ति द्वारा दिया जा रहा है, क्योंकि उनका परिचय नहीं कराया गया है।'' इस पर सभापति ने यह कहा, ''हमारे यहां परिचय कराने की प्रथा है।'' तत्पश्चात् एक वरिष्ठ मंत्री, श्री जयसुखलाल हाथी ने सभा में मंत्री का परिचय कराया।[251] एक अन्य अवसर पर एक अन्य मंत्री की अनुपस्थिति में, जिसका तब तक सभा में परिचय नहीं कराया गया था, एक मंत्री द्वारा कर्नाटक के संबंध में उद्घोषणा की प्रति सभा पटल पर रखे जाने पर आपत्ति प्रकट की गई थी।[252]

प्रधान मंत्री ने भोजनावकाश के पश्चात् मंत्रियों का परिचय कराया। जिन मंत्रियों का परिचय कराया गया था उनमें से एक मंत्री पहले ही प्रात: कार्यवाही में भाग ले चुका था। यह औचित्य-प्रश्न उठाया गया था कि ऐसा किया जाना गलत है। सभापति ने यह व्यवस्था दी, ''शपथ दिलाये जाने के पश्चात् मंत्री अपना कार्य-भार ग्रहण कर लेता है। उसका परिचय कराया जाना औपचारिकता-भर है।''[253]

एक अवसर पर जब प्रधान मंत्री एक मंत्री का परिचय कराने वाले थे, तब कुछ सदस्यों ने आपत्ति की। आपत्ति इस बात को लेकर थी कि उस मंत्री-विशेष ने 'सती' प्रथा का समर्थन किया था। प्रधान मंत्री ने मंत्री द्वारा 'सती' का समर्थन किये जाने का खंडन करते हुए एक वक्तव्य दिया। मंत्री ने भी स्थिति स्पष्ट की। जब प्रधान मंत्री एक अन्य मंत्री का परिचय करा रहे थे, तब विपक्ष के नेता ने आपत्ति की और उनकी आपत्ति यह थी कि उस मंत्री के विरुद्ध एक आपराधिक मामला लंबित है।[254]

किसी ऐसे व्यक्ति को, जो संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है, मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन यदि वह मंत्री के रूप में अपनी नियुक्ति की तारीख से निरन्तर छह मास की अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं बन पाता है, तो वह मंत्री नहीं रहेगा।[255]

3 अप्रैल, 1970 को तीन मंत्रियों डा॰ एस॰ चन्द्रशेखर, डा॰ (श्रीमती) फूलरेणु गुहा और श्रीमती जहांआरा जयपाल सिंह की संवैधानिक वैधता के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया था, जोकि पिछले दिन राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त हो जाने पर सदस्य नहीं रहे थे। अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क भी दिया गया था कि इन मंत्रियों को त्याग-पत्र दे देना चाहिए था या यदि उन्हें अपने पद पर बने ही रहना था तो प्रधान मंत्री द्वारा उनकी फिर से नियुक्ति की जानी चाहिए थी। विधि मंत्री (श्री पी॰ गोविन्द मेनन) ने उत्तर देते हुए यह कहा कि प्रधान मंत्री ने इस मामले में महान्यायवादी की राय प्राप्त कर ली थी जोकि निम्नलिखित थी:

> प्रधान मंत्री द्वारा मुझसे यह प्रश्न पूछा गया है कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति, जो मंत्री रहा है और राज्य सभा का सदस्य भी रहा है, परन्तु अब राज्य सभा का सदस्य नहीं रहा है, संविधान के अन्तर्गत मंत्री बना रह सकता है।
>
> इस संबंध में सविधान में एकमात्र संगत उपबंध अनुच्छेद 75(5) है...
>
> ...इस उपबन्ध की मूल भावना यह है कि ऐसा कोई व्यक्ति, जो मंत्री है, निरंतर छह मास की अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं होने पर मंत्री नहीं रहेगा। इसका यह आशय है कि कोई व्यक्ति, जो मंत्री बन जाता है लेकिन किसी सदन का सदस्य नहीं है, तो उसके मंत्री पद ग्रहण करने के पश्चात् छह मास के अन्दर किसी सदन का सदस्य न बनने पर वह मंत्री नहीं रहेगा। इसका यह भी आशय है कि यदि छह मास की अवधि के पश्चात् वह किसी सदन का सदस्य नहीं रहता है, तो छह मास की अवधि उस तारीख से पुन: आरम्भ हो जायेगी, जिससे वह किसी सदन का सदस्य नहीं रहा है और यदि वह इस निरन्तर छह मास की अवधि की समाप्ति पर किसी सदन का सदस्य नहीं होता है, तो वह मंत्री नहीं रहेगा।
>
> ऐसी स्थिति में कोई मंत्री, जो 2 अप्रैल, 1970 को राज्य सभा का सदस्य नहीं रहा है, मेरे विचार में निरन्तर छह मास की अवधि तक मंत्री रह सकता है, लेकिन किसी सदन का सदस्य बने बिना इससे अधिक अवधि तक मंत्री नहीं रह सकता है। उसके लिए त्याग-पत्र देना, फिर से शपथ लेना और तत्पश्चात्, मंत्री बनना आवश्यक नहीं होगा।

उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ इस चर्चा को समाप्त किया:

> इसमें तीन पहलू अंतर्ग्रस्त हैं: पहला तथ्यात्मक है, दूसरा संवैधानिक है और तीसरा राजनीतिक नैतिकता का है...

जहां तक तथ्यात्मक पहलू का संबंध है, तीनों माननीय मंत्री 2 अप्रैल की मध्य रात्रि को किसी भी सदन के सदस्य नहीं रहे। जैसाकि माननीय मंत्री द्वारा बताया गया है, माननीय मंत्रियों ने अपने त्याग-पत्र दे दिये हैं और उनके त्याग-पत्रों को माननीय प्रधान मंत्री के पास भेज दिया गया है। इसका यह आशय है कि उन्होंने इस स्थिति में उचित कार्यवाही की है। माननीय प्रधान मंत्री ने ही उनसे कुछ और समय के लिए अपने पदों पर बने रहने के लिए कहा है। ये तथ्य हैं।

जहां तक संवैधानिक स्थिति का संबंध है, परस्पर-विरोधी विचार व्यक्त किये गये हैं और मेरे विचार में संवैधानिक पहलू पर चर्चा करने और निर्णय करने के लिए यह उपयुक्त मंच नहीं है। संवैधानिक मामलों का निर्णय करने के लिए अन्य मंच हैं।

जहां तक राजनीतिक नैतिकता का संबंध है, मेरे विचार में इस मामले पर सरकार को विचार करना चाहिए। माननीय विधि मंत्री और सदन के नेता द्वारा यह बताया गया है कि वे दोनों ही माननीय सदस्यों की भावनाओं से प्रधान मंत्री को अवगत करा देंगे...अत: माननीय सदस्यों की भावनाओं या उनके द्वारा जो भी विचार व्यक्त किये गये हैं, उन पर माननीय प्रधान मंत्री द्वारा विचार किया जायेगा।[256]

अगले दिन इस मामले को पुन: उठाया गया। विरोधी दल के नेता (श्री श्याम नन्दन मिश्र) और श्री भूपेश गुप्त ने क्रमश: निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने चाहे, जिनको पिछले दिन उपसभापति द्वारा अनुमति नहीं दी गई थी:

''यह सभा डा॰ चन्द्रशेखर, श्रीमती फूलरेणु गुहा और श्रीमती जहांआरा जयपाल सिंह के मंत्रि-परिषद् के सदस्य बने रहने का निरनुमोदन करती है, क्योंकि वे इस सभा के सदस्य नहीं रहे हैं।''

''इस सभा की यह सम्मति है कि प्रधान मंत्री, श्रीमती जहांआरा जयपाल सिंह, डा॰ फूलरेणु गुहा और डा॰ चन्द्रशेखर के मंत्रि-परिषद् के सदस्य बने रहने के बारे में व्यक्त किये गये भिन्न-भिन्न और अत्यधिक परस्पर-विरोधी विचारों पर उचित ध्यान दें और औचित्य-मानकों और प्रशासनिक प्रभावकारिता को ध्यान में रखते हुए संविधान के उपबन्धों के अनुरूप उठाये गये मामले का निपटारा करें।''

सभापति ने भी उक्त प्रस्तावों को उपस्थित करने की अनुमति प्रदान नहीं की थी।[257] 27 अप्रैल, 1982 को इस मुद्दे को प्रश्नों के समय के दौरान पुन: उस समय उठाया गया जब एक मंत्री (श्री सवाई सिंह सिसोदिया) ने, जो सदस्यता से निवृत्त हो जाने पर सभा के सदस्य नहीं रह गये थे, प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया। सभापति ने कुछ सदस्यों की बात सुनने के पश्चात् अपने विनिर्णय को सुरक्षित रखा।[258] 5 मई, 1982 को उन्होंने निम्नलिखित व्यवस्था दी:

हाल ही में प्रश्नों के समय के दौरान एक माननीय मंत्री द्वारा, जो अवधि समाप्त हो जाने पर सभा के सदस्य नहीं रहे, मंत्री के रूप में प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ करने पर आपत्ति की गई थी। यह तर्क दिया गया था कि मंत्री के रूप में उनकी शपथ की अवधि समाप्त हो गई है और उन पर संविधान के अनुच्छेद 75(5) के उपबंध लागू होने से पूर्व उनकी पुन: नियुक्ति की जानी चाहिए और उन्हें मंत्री के रूप में शपथ दिलाई जानी चाहिए।

मैंने अपनी व्यवस्था सुरक्षित रखते हुए मंत्री को सरकार की ओर से प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति प्रदान की। अब मैं अपनी व्यवस्था दे रहा हूं।

मेरा ध्यान सभा की 3 अप्रैल, 1970 की कार्यवाही की ओर आकृष्ट किया गया क्योंकि उस दिन भी इसी प्रकार का प्रश्न उठाया गया था। इस मामले पर काफी विस्तार से चर्चा की गई लेकिन उस समय मंत्रियों द्वारा त्याग-पत्र दे दिये जाने के कारण उपसभापति से इस पर अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए नहीं कहा गया था। तथापि, महान्यायवादी ने मंत्री के रूप में कार्य निष्पादित करने के सम्बद्ध मंत्री के दावे की पुष्टि करते हुए अपनी राय व्यक्त की थी। मैंने वाद-विवाद और महान्यायवादी की राय का अध्ययन किया है। मैं उस राय से सहमत हूं। (पीछे **देखिए**)

मेरे विचार में स्थिति नि:संदेह रूप से स्पष्ट है और सभा में पूर्व-निर्णय भी इसी का समर्थन करते हैं जिनकी ओर सदन के नेता ने, उनके मामले सहित, ध्यान आकृष्ट किया है। नि:संदेह सभा की प्रक्रिया

और पूर्व-निर्णय संविधान और विधि के विरुद्ध नहीं हो सकते हैं और इस मामले का हमेशा के लिए निपटारा कर दिया जाना चाहिए। मैं अपनी सम्मति में संविधान के उपबंधों पर ही निर्भर करता हूं।

अनुच्छेद 75(5), जोकि संगत उपबंध है, निम्नलिखित है और कृपया इसकी शब्दावली पर ध्यान दीजिये:

कोई मंत्री, जो निरन्तर छह मास की किसी अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।

उप-अनुच्छेद ''कोई मंत्री'' शब्दों से आरम्भ होता है न कि ''कोई व्यक्ति'' शब्दों से। यह इस तथ्य को दर्शाता है कि कोई मंत्री निरन्तर छह मास की अवधि तक मंत्री के रूप में कार्य कर सकता है चाहे ऐसे व्यक्ति को मंत्री के रूप में नई शपथ दिलाई गई हो या उसने अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व शपथ-ग्रहण की हो और मंत्री के रूप में कार्य कर रहा हो। यदि इसका आशय भिन्न होता, तो उप-अनुच्छेद निम्नलिखित रूप में होता:

कोई व्यक्ति जो संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है या सदस्य नहीं रहता है, मंत्री के रूप में शपथ-ग्रहण कर सकता है, लेकिन यदि वह निरन्तर छह मास की अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है, तो वह उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।

''निरन्तर छह मास'' शब्दों पर दिये गये बल से यह निष्कर्ष निकलता है कि मंत्री, मंत्री के रूप में कार्यकाल के आरम्भ होने के अनन्तर मंत्री बना रहता है। उसके किसी सदन के सदस्य न रहने से इसकी निरन्तरता में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता है।

जहां तक शपथ का संबंध है, तत्काल यह कहा जा सकता है कि कोई मंत्री दो बार शपथ ग्रहण करता है। पहली बार वह सदन के सदस्य के रूप में शपथ ग्रहण करता है और दूसरी बार वह मंत्री पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ ग्रहण करता है। पहली बार ली गई शपथ समाप्त हो जाती है क्योंकि वह किसी भी विधि द्वारा सदस्य के रूप में अपना दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता है लेकिन दूसरी बार ली गई शपथ समाप्त नहीं होती है क्योंकि अनुच्छेद 75(5) संविधान के बल से ही निरन्तर छह मास की अवधि तक मंत्री के रूप में उसकी पुष्टि करता है। नये सिरे से शपथ-ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रयोजनार्थ ग्रहण की गई शपथ पर्याप्त होती है।[259]

इस प्रकार, ऐसे दृष्टान्त रहे हैं जब मंत्री, संसद् के किसी भी सदन के सदस्य नहीं होने के बाद भी मंत्री बने रहे हैं।

उदाहरणार्थ, श्री सीताराम केसरी की राज्य सभा की सदस्यता की अवधि 2 अप्रैल, 1980 को समाप्त हो गई थी और वह जून, 1980 में पुन: निर्वाचित हुए; श्री प्रणब मुखर्जी की राज्य सभा की सदस्यता की अवधि 9 जुलाई, 1981 को समाप्त हो गई थी और पुन: निर्वाचित होने पर उनकी सदस्यता की नई अवधि 13 अगस्त, 1981 से आरम्भ हुई। दोनों ही मंत्री बने रहे।[260] पुन: श्री योगेन्द्र मकवाणा की सदस्यता अवधि 2 अप्रैल, 1988 को समाप्त हो गई लेकिन वह 1 अक्तूबर, 1988 तक (अर्थात्, पूरे छह माह तक) मंत्री बने रहे।

तथापि, किसी मंत्री की उसके संसद्-सदस्य निर्वाचित होने पर मंत्री के रूप में पुन: नियुक्ति की जा सकती है।

श्री प्रणब मुखर्जी को 18 जनवरी, 1993 को मंत्री के रूप में शपथ दिलायी गई थी। वह उस समय संसद् सदस्य नहीं थे। उन्होंने 9 जुलाई, 1993 से अपना पद त्याग दिया था।[261] वह पश्चिमी बंगाल से राज्य सभा के लिए निर्वाचित हुए और उनका कार्यकाल 19 अगस्त, 1993 से आरम्भ हुआ। उन्हें 31 अगस्त, 1993 से मंत्री के रूप में पुन: नियुक्त किया गया था।[262]

मंत्री को दोनों सदनों में उपस्थित होने और कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होता है लेकिन वह उस सदन में, जिसका वह सदस्य नहीं है, मत नहीं दे सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी मंत्री को, जो किसी एक सदन का सदस्य है, दूसरे सदन में बोलने और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग लेने का अधिकार होता है, लेकिन उसे वहां मत देने का अधिकार नहीं होता है।[263]

राजभाषा विधेयक के संबंध में उठाये गये औचित्य प्रश्न पर जब एक मंत्री, जो लोक सभा के सदस्य थे, बोल रहे थे, तब यह आपत्ति की गई थी कि यह औचित्य प्रश्न विशुद्धत: सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों

के सम्बन्ध में है और केवल सदन के सदस्यों को ही इस पर बोलना चाहिए। सभापति ने यह कहते हुए उस औचित्य प्रश्न को खारिज कर दिया, ''सभी मंत्री किसी भी सदन में बोलने के लिए अधिकृत हैं।''[264]

जब एक मंत्री ने, जो दूसरे सदन के सदस्य थे, और औचित्य प्रश्न उठाना चाहा, तब नियम 258 को देखते हुए, जो सदन के सदस्य को ही कोई औचित्य-प्रश्न उठाने का अधिकार प्रदान करता है इस पर आपत्ति की गई थी। सभापति ने यह व्यवस्था दी कि पूर्व-निर्णय और संविधान के अनुच्छेद 88 को देखते हुए जोकि ''अधि-विधि'' है, मंत्री औचित्य प्रश्न उठा सकता है।[265]

किसी मंत्री को, जो सदन का सदस्य नहीं है या किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, राज्य सभा के सत्रों के लिए आह्वान-पत्र जारी नहीं किये जाते हैं। वस्तुत: कोई मंत्री, जो राज्य सभा का सदस्य नहीं है, सदन में मंत्री की हैसियत से ही बोल सकता है, वैयक्तिक हैसियत से नहीं। तथापि, राज्य सभा में ऐसे अवसर आए हैं जब मंत्रियों ने अपनी वैयक्तिक हैसियत से अपने विचार व्यक्त किये हैं और इस मामले में किसी प्रकार की कोई आपत्ति प्रकट नहीं की गई है।

26 नवम्बर, 1954 को खाद्य और कृषि मंत्री (श्री ए॰ पी॰ जैन) गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्ताव पर हो रही बहस के दौरान हस्तक्षेप कर रहे थे। उन्होंने यह कहा कि उन्हें मंत्रालय का कार्य-भार संभाले चौबीस घंटे का समय भी नहीं हुआ है और वह इस संकल्प के विभिन्न निहितार्थों का अध्ययन करने की स्थिति में नहीं हैं। अत: जब वह यह कह रहे थे, तब यह ऐसा अपनी वैयक्तिक हैसियत से कह रहे थे और इसका शासकीय उत्तर अन्य सहयोगी द्वारा दिया जायेगा। इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई थी।[266]

इसी तरह जब मानव संसाधन विकास मंत्री (श्री माधव राव सिंधिया) ने अपने वैयक्तिक विचार व्यक्त करने के लिए सरकारी सेवाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण पर चल रही चर्चा में हस्तक्षेप किया, तब इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई थी।[267]

किसी दिवस की कार्यावलि में उल्लिखित कार्य के निष्पादन के लिए मंत्री वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। यदि वे किसी कारण से सदन में उपस्थित हो पाने में असमर्थ होते हैं, तो शिष्टाचार और परम्परावश उनसे सभापति को इसकी पूर्व सूचना देने और अपनी अनुपस्थिति में संसदीय कार्य के निष्पादनार्थ अन्य मंत्री की वैकल्पिक व्यवस्था करने की अपेक्षा की जाती है।[268]

18 नवम्बर, 1985 को संसद् के सत्र के दौरान प्रधान मंत्री की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के बारे में एक मुद्दा उठाया गया था। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

सदन के विशेषाधिकारों के अभिरक्षक के रूप में मुझे कुछ शब्द कहने हैं। यह सिद्धान्त कि भारत का प्रधान मंत्री संसद् के सत्र के दौरान राजधानी में रहे, अनाक्रमणीय है, इसे स्वीकार किया गया है और इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई है या इसे कोई चुनौती नहीं दी गई है। लेकिन यह कोई अनन्य नियम नहीं है। अनेक अवसरों पर सरकार और प्रशासन की अत्यावश्यकताओं के कारण और देश के हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रधान मंत्री और कुछ मंत्रियों का बाहर जाना आवश्यक हो जाता है। इस मामले में प्रधान मंत्री ने सदन के सभापति के रूप में मुझे पत्र लिखा है। उन्होंने यह कहा है कि छ: राष्ट्राध्यक्षों में उन्हें भी आमंत्रित किया है और जिन राष्ट्राध्यक्षों से उनकी भेंट होगी उनसे अत्यधिक लाभदायक चर्चा होगी। इसके अतिरिक्त, जैसाकि सदन के नेता ने कहा है, वहां 2,00,000 से भी अधिक भारतीय कार्य कर रहे हैं और उस देश से सद्भावनापूर्ण संबंध बनाये रखना आवश्यक है। इसलिए मेरे विचार में इस मामले में कुछ भी अनुचित नहीं है। मैं निस्सन्देह रूप से इस विचार का समर्थक हूं कि प्रधान मंत्री को सामान्यत: संसद् के सत्र के दौरान राजधानी में उपस्थित रहना चाहिए।[269]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री ने रक्षा मंत्री (अनुसंधान और विकास) की ओर से राष्ट्रीय कैडेट कोर की केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति के एक सदस्य के निर्वाचन के लिए प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा। इस बात पर यह आपत्ति की गई थी कि क्या रक्षा मंत्री ने संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री को अधिकृत करते हुए सभापति को इसकी लिखित रूप में सूचना दी थी। सभापति ने इस मुद्दे की संपुष्टि की। प्रस्ताव पर विचार नहीं किया गया।[270]

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव जैसे महत्त्वपूर्ण वाद-विवादों के मामले में चर्चा के दौरान उठाये गये मुद्दों के संबंध में सामान्यत: प्रधान मंत्री सरकार की स्थिति को स्पष्ट करता है। तथापि, प्रमुख विषयों पर वाद-विवाद के दौरान सदन में किसी वरिष्ठ मंत्री की उपस्थिति हमेशा अपेक्षित होती है। अनेक अवसरों पर महत्त्वपूर्ण चर्चाओं के दौरान मंत्रियों की अनुपस्थिति पर सभापीठ को टिप्पणियां करनी पड़ी हैं। ऐसे भी अवसर आए हैं जब मंत्रियों की अनुपस्थिति के कारण सभा को कुछ समय के लिए स्थगित करना पड़ा है।[271]

भारत का महान्यायवादी

महान्यायवादी न तो संसद् का सदस्य होता है और न ही मंत्रि-परिषद् का। तथापि, उसे किसी भी सदन में, सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद् की किसी समिति में, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया है, बोलने और उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होता है, किन्तु वह इस उपबंध के आधार पर मत नहीं दे सकता है।[272] वह संसद्-सदस्यों को सुलभ सभी विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के लिए अधिकृत होता है।[273]

राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय[274] का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित किसी व्यक्ति को महान्यायवादी नियुक्त करता है।[275] वह राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करता है।[276]

महान्यायवादी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे विधि सम्बन्धी विषयों पर भारत सरकार को परामर्श देगा और विधि संबंधी प्रकृति के ऐसे अन्य कार्य करेगा, जो समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा उसके पास भेजे जायें या प्रदत्त किये जायें। वह संविधान[277] या अन्य किसी विधि[278] द्वारा प्रदत्त कार्य भी करता है। महान्यायवादी को अपने कर्त्तव्यों के पालन में देश में सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होता है।[279]

अभी तक ऐसा कोई अवसर नहीं आया है जब महान्यायवादी राज्य सभा में उपस्थित हुआ हो। तथापि, अनेक अवसरों पर सदस्यों ने सदन के विचाराधीन मामले के कतिपय पहलुओं पर अपनी सम्मति देने के लिए सदन में महान्यायवादी के उपस्थित होने की मांग की है।[280]

> जब उप वित्त मंत्री अनिवार्य निक्षेप विधेयक, 1963 की संवैधानिक वैधता पर महान्यायवादी की राय की एक प्रति सभा पटल पर रख रहे थे, तब सदन की यह आम राय थी चूंकि महान्यायवादी लोक सभा में आ रहे हैं अत: उन्हें राज्य सभा में भी आना चाहिए। तथापि, मंत्री को उक्त दस्तावेज को सभा पटल पर रखने की अनुमति प्रदान की गई थी।[281] (तथापि, उन्हें नहीं बुलाया गया था।)

> महान्यायवादी को 4 अगस्त, 1993 को लोक सभा में उपस्थित होना था। राज्य सभा में यह मांग की गई थी कि महान्यायवादी को यहां भी बुलाया जाना चाहिए। उपसभापति ने यह कहा कि वह सभापति को इन भावनाओं से अवगत करा देंगी।[282] अगले दिन पुन: इस मामले को उठाया गया। उपसभापति ने यह जानकारी दी कि कार्य मंत्रणा समिति, जिसकी उस दिन बैठक होनी थी, इसके बारे में निर्णय करेगी। कार्य मंत्रणा समिति का यह विचार था कि महान्यायवादी को निर्वाचन आयोग की शक्तियों आदि के मुद्दे पर अपनी राय व्यक्त करने के लिए सदन में बुलाने की आवश्यकता नहीं है।[283]

सदस्य किसी विधेयक या सदन के सदस्य के समक्ष किसी कार्य के सम्बन्ध में महान्यायवादी से सदन में उपस्थित होने का अनुरोध करते हुए किसी प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं। ऐसी सूचना को स्वीकार कर लिया जाता है और उस पर कोई निर्णय लेना सदन का कार्य है।

नियम 170 के अधीन निम्नलिखित प्रस्ताव को स्वीकार किया गया था:[284]

> ''यत: यह सदन बोफोर्स सौदे के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर विचार करेगा;

और यत: प्रतिवेदन में विधि संबंधी अनेक मुद्दे उठाये गये हैं;

अत: यह सदन भारत के महान्यायवादी से इस सदन में उपस्थित होने और उक्त प्रतिवेदन से उत्पन्न मुद्दों के संबंध में परामर्श देने का अनुरोध करता है।''

सदन में बोफोर्स समझौते के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर अल्पकालिक चर्चा आरम्भ होने से पूर्व इस प्रस्ताव को उपस्थित किया गया, इस पर चर्चा हुई और यह मत-विभाजन से अस्वीकृत हुआ।[285]

सभापति के निदेश के अन्तर्गत प्रक्रिया संबंधी विषयों या संवैधानिक उपबंधों के संबंध में महान्यायवादी की राय जानने के लिए ऐसे विषयों को उनके पास भेजा गया है।

संविधान (बासठवां संशोधन) विधेयक, 1988 पर, जिसमें मतदान की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष कर दी गयी थी, 16 दिसम्बर, 1988 को विचार आरम्भ हुआ। इस विधेयक पर 19 और 20 दिसम्बर, 1988 को विचार किया गया था और 20 दिसम्बर, 1988 को इसे अन्तिम रूप से पारित कर दिया गया था। 19 दिसम्बर, 1988 को एक सदस्य को इस विधेयक का आधे राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किये जाने की आवश्यकता के संबंध में विशेष उल्लेख करने की अनुमति प्रदान की गई थी। विशेष उल्लेख के दौरान सदस्य ने यह तर्क दिया कि इस विधेयक का अनुसमर्थन किये जाने की आवश्यकता नहीं है और यदि सरकार अभी भी ऐसा मानती है कि इसका अनुसमर्थन आवश्यक है, तो महान्यायवादी को सदन के समक्ष उपस्थित होने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।[286] 20 दिसम्बर, 1988 को विधि मंत्री ने विधेयक के तृतीय वाचन का उत्तर देते हुए यह कहा कि विधि मंत्रालय[287] द्वारा व्यक्त किये गये और राज्य सभा सचिवालय को संसूचित विचार के अनुसार इस विधेयक के अनुसमर्थन की आवश्यकता होगी।[288] तथापि, एक सदस्य के लिखित अनुरोध पर सभापति ने इस मामले को अपनी राय व्यक्त करने के लिए महान्यायवादी के पास भेज दिया।[289] उन्होंने विधि मंत्रालय द्वारा व्यक्त किये गये विचार की संपुष्टि की।

27 दिसम्बर, 1990 को गैर-कांग्रेस (आई) विरोधी दलों के सदस्यों ने कांग्रेस (आई) दल के समर्थन से जनता दल (एस) द्वारा सरकार के गठन के परिप्रेक्ष्य में राज्य सभा में कांग्रेस (आई) दल के विरोधी दल के रूप में बने रहने के संबंध में एक मुद्दा उठाया। सभापति ने 28 दिसम्बर, 1990 को सदस्यों को यह सूचित किया कि वह इस मामले पर न्यायिक चित्त से निर्णय करेंगे। अत: इस मामले को महान्यायवादी के पास उनकी राय के लिए भेज दिया गया। 2 जनवरी, 1991 को सभापति ने महान्यायवादी की राय के एक अंश को उद्धृत करते हुए एक घोषणा की।[290]

समितियों ने भी अपने विचाराधीन मामलों को महान्यायवादी की राय जानने के लिए उनके पास भेजा है।

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति ने विधि मंत्रालय के माध्यम से छावनी अधिनियम, 1924 के अधीन छावनी बोर्ड द्वारा लगाये गये करों से प्राप्त राशि के एक अंश को सरकार को अन्तरित करने की उसकी सक्षमता के संबंध में एक मामले को भेजा था।[291]

विशेषाधिकार समिति ने निम्नलिखित मुद्दों को महान्यायवादी की राय जानने के लिए उनके पास भेजा था:

(1) क्या संसद् विदेशी राष्ट्रिकों द्वारा भारत में अपने प्रवास के दौरान किसी विशेषाधिकार के उल्लंघन या अवमानना के लिए उन पर अपनी अधिकारिता रख सकती है।[292]

(2) संविधान के अनुच्छेद 79 का सुस्पष्ट विस्तार; क्या राष्ट्रपति पर लगाये गये आक्षेपों को संसद् का अनादर करना माना जा सकता है और इस तरह से इसकी विशेषाधिकार अधिकारिता को आकृष्ट किया जा सकता है और क्या राष्ट्रपति के विरुद्ध अनादर-सूचक और असम्मानजनक लेखों के लिए दण्डित करने हेतु वर्तमान कानून पर्याप्त है।[293]

(3) अवमानना करने वाले व्यक्ति को अर्थदंड देने की संसद् की शक्ति (अनौपचारिक राय)।[294]

विधेयकों संबंधी संयुक्त समितियों ने भी उनके पास भेजे गये विधेयकों के विभिन्न पहलुओं के बारे में अपने विचार व्यक्त करने के लिए महान्यायवादी को आमंत्रित किया है। उदाहरणार्थ न्यायालय अवमान विधेयक, 1968[295] और दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970[296] संबंधी संयुक्त समितियों के समक्ष महान्यायवादी उपस्थित हुए थे।

ऐसे अवसर भी आये हैं जब सरकार ने स्व-प्रेरणा से सदन में उठाये गये कतिपय प्रश्नों को महान्यायवादी की राय जानने के लिए उनके पास भेजा है और सभापति या सदन को तद्नुसार सूचित किया है।

> जब कुछ मंत्रियों के राज्य सभा के सदस्य न रहने पर भी पदों पर बने रहने का मामला उठाया गया था तब विधि मंत्री ने सदन को प्रधान मंत्री द्वारा महान्यायवादी से प्राप्त की गई राय के बारे में सूचित किया।[297]

> मार्च-अप्रैल, 1989 (149वां सत्र) के दौरान सभा में यह विवाद उत्पन्न हो गया था कि क्या 27 मार्च, 1989 को सभा पटल पर रखा गया ठक्कर समिति का प्रतिवेदन सम्पूर्ण प्रतिवेदन है या नहीं और विपक्ष यह चाहता था कि सभापति प्रतिवेदन से संबद्ध पत्रों को सभा पटल पर रखने के लिए सरकार को निदेश दें। सभापति ने यह कहा कि सरकार ने उन्हें यह सूचित किया है कि महान्यायवादी के परामर्श से कतिपय पत्र आयोग को उपलब्ध दस्तावेजों और आयोग की कार्यवाहियों की श्रेणी में आते हैं और जांच आयोग अधिनियम के अन्तर्गत ''प्रतिवेदन'' शब्द के अर्थान्तर्गत नहीं आते हैं और इसलिए उन्हें सभा पटल पर नहीं रखा गया है। महान्यायवादी की राय से अवगत करा दिये जाने पर सभापति ने इस मामले में सरकार को कोई निदेश देने से इन्कार कर दिया।[298]

सचेतक

संसद् के कार्यकरण में सचेतक की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनका चयन सत्तारूढ़ दल और विरोधी दल या दलों और संसद् में किसी दल के आन्तरिक संगठन में महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में से किया जाता है। वे संसद् में दलों के महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी होते हैं।

'सचेतक' शब्द किसी शिकारी द्वारा शिकारी कुत्तों की देखभाल और उन्हें जंगल में एक साथ रखने के लिए नियुक्त ''शिकारी कुत्तों का रखवाला'' वाक्यांश से लिया गया है।[299] 'कन्साइज़ ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' में 'सचेतक' को ''अपने दल के सदस्यों में अनुशासन बनाये रखने, उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने और उन्हें आवश्यक जानकारी देने के लिए नियुक्त किये गये पदाधिकारी'' के रूप में वर्णित किया गया है। यह शब्द ऐसे व्यक्ति द्वारा किये गये आह्वान या अपील पर भी लागू होता है और इस अर्थ में शब्दकोश द्वारा इसकी ''ऐसी लिखित सूचना (अनेक रेखाओं द्वारा चिह्नित और रेखाओं की संख्या से अत्यावश्यकता को दर्शाते हुए) के रूप में व्याख्या की गई है जिसमें किसी अवसर विशेष पर उपस्थिति का अनुरोध किया गया हो।''

सदन में अपनी सदस्य संख्या के अनुरूप प्रत्येक दल का एक सचेतक या अनेक सचेतक होते हैं। संसद् में मान्यता-प्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 के अधीन, मान्यता-प्राप्त दलों से, राज्य सभा के संबंध में, वह प्रत्येक दल अभिप्रेत है जिसके सदस्यों की संख्या सभा में पच्चीस से कम न हो और मान्यता-प्राप्त समूह से राज्य सभा के संबंध में, वह प्रत्येक दल अभिप्रेत है जिसके सदस्यों की संख्या पन्द्रह से कम न हो।

सभी दलों के सचेतकों के कार्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य सरकार के मुख्य सचेतक का होता है। वह सत्र के लिए समय निर्धारित करता है, सरकारी कार्य को सम्पन्न कराता है और दिवस की बैठक के लिए कार्य नियत करता है। सदन के सत्र के दौरान सरकार के मुख्य सचेतक का मुख्य कार्य तयशुदा कार्यक्रम के अनुरूप सरकारी कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करना होता है। संसदीय कार्य और प्रक्रिया के संबंध में सरकार को परामर्श देना और ऐसे कार्य के संबंध में, जिससे मंत्रियों के विभाग प्रभावित होते हों, उनसे निकट सम्पर्क बनाये रखना भी उसका कर्त्तव्य है। सरकारी कार्य के सुचारु रूप से निष्पादन के प्रबन्धन में सरकार के मुख्य सचेतक को प्रत्येक मत-विभाजन के समय बहुमत सुनिश्चित करना होता है। उसे कार्यवाहियों पर भी सतर्कतापूर्वक ध्यान रखना होता है और किसी भी क्षण उत्पन्न आपात स्थिति का सामना

करने के लिए भी तैयार रहना होता है। संक्षेप में उसे अधिकांश समय सदन की भावनाओं को समझना होता है। वह वाद-विवाद की व्यवस्था करता है और उसके स्वरूप को निर्धारित करता है क्योंकि वह अपने दल के वक्ताओं की सूची सभापति को प्रस्तुत करता है।

सरकारी सचेतकों का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य ''सदन की बैठकें आयोजित करना और उक्त बैठकों में सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करना होता है''। सदन की व्यवस्था में यह सुनिश्चित करना होता है कि ''गणपूर्ति'' के लिए आवश्यक संख्या में सदस्य हमेशा उपस्थित रहें, विशेष रूप से अपने पसन्दीदा वक्ताओं का समर्थन करने के लिए सदस्य उपस्थित रहें।[300] सरकारी कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करने के लिए सरकारी सचेतक और अन्य सभी सचेतकों को परस्पर सम्पर्क बनाये रखना होता है। संसदीय पदावलि में ''सामान्य सम्पर्क-सूत्रों'' के रूप में विदित तरीके से जिसमें विभिन्न दलों के सचेतकों के मध्य नजदीकी कार्य-साधक संबंध सम्मिलित हैं, दिन-प्रतिदिन के कार्य-साधक प्रबन्ध और समझौते किये जाते हैं। सिद्धांतत:, परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंधों में किसी प्रकार की कोई दरार उत्पन्न न होने देने के लिए सचेतक वाद-विवादों में भाग नहीं लेते हैं। औपचारिक प्रस्तावों के अतिरिक्त, सरकारी सचेतक कार्यवाहियों के दौरान मौन धारण किये रहते हैं।

मान्यता-प्राप्त समूह तथा मान्यता-प्राप्त दल का प्रत्येक नेता, उप नेता और प्रत्येक मुख्य सचेतक भारतीय संसद् के सचिवालय से दूरभाष और सचिवालयी सुविधायें पाने का हकदार है।

भारतीय संसद् में संसदीय कार्य मंत्री सरकार का मुख्य सचेतक होता है। कुछ राज्य मंत्री, जोकि दोनों सदनों के सदस्य होते हैं, उनकी सहायता करते हैं। राज्य सभा में संसदीय कार्य राज्य मंत्री सरकारी सचेतक होता है/होते हैं। मुख्य सचेतक द्वारा किये जाने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हैं: संसद् के सत्र की अवधि का निर्धारण करना, दोनों सदनों के मध्य सत्र संबंधी कार्य का समायोजन करना, मंत्रालयों से परामर्श कर सरकारी कार्य को अन्तिम रूप देना, कार्यक्रम के अनुरूप सरकारी विधायी और गैर-विधायी तथा वित्तीय कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करना, साप्ताहिक सरकारी कार्य की घोषणा करना, सदस्यों को सूचना देना अर्थात्, सचेतक कार्य की तात्कालिकता और महत्त्व को दर्शाता है, दोनों सदनों में हर समय मंत्रियों की उपस्थिति को सुनिश्चित करने हेतु मंत्रियों के नामों की सूची बनाना, सामग्री और सामान्य मार्ग-दर्शन प्रदान कर सदस्यों की सहायता करना, सदन में विधेयकों और अन्य कार्य के संबंध में सभापीठ को वक्ताओं की सूची प्रदान करना ताकि वह वक्ताओं से बोलने के लिए कह सके, विभिन्न संसदीय समितियों और अन्य निकायों में नियुक्ति हेतु या विभिन्न संसदीय शिष्टमंडलों में सम्मिलित किये जाने हेतु सदस्यों के नामों का सुझाव देना, विभिन्न सरकारी कार्यों के लिए चर्चा और समय के आवंटनार्थ कार्य मंत्रणा समिति की बैठकों में भाग लेना।

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम के अन्तर्गत कोई सदस्य सचेतक (अधिनियम में इसे 'निदेश' कहा गया है) के विरुद्ध मतदान करता है या स्वयं को मतदान से अलग रखता है, तो वह सदन में अपनी सदस्यता गंवा देने का खतरा मोल लेता है। इस तरह से सचेतक द्वारा भेजे गए दस्तावेज या लिखित सूचना ने संवैधानिक दर्जा प्राप्त कर लिया है।

महासचिव

राज्य सभा में सभापति और उपसभापति के पश्चात् तीसरा महत्त्वपूर्ण अधिकारी महासचिव होता है।[301] वह सभापति का और सभापति के माध्यम से सदन का सलाहकार होता है। वह सभापति की ओर से तथा उसके नाम से सभी प्रशासनिक और कार्यपालक कृत्यों का निर्वहन करता है। कोई भी दो व्यक्ति सदन से

संबंधित अपने-अपने कार्य के संबंध में इतनी घनिष्ठता से सहबद्ध नहीं होते हैं जितनी घनिष्ठता से सभापति और महासचिव सहबद्ध होते हैं। उनके बीच एक दूसरे के प्रति अत्यंत विश्वास का संबंध विद्यमान होता है। संसदीय व्यवस्था में महासचिव की भूमिका महत्त्वपूर्ण और बहुत उत्तरदायित्त्वपूर्ण होती है। वह सदन के संचित निर्णयों और पूर्व निर्णयों का भंडार, सदन की परिपाटियों और परम्पराओं का अभिरक्षक और राज्य सभा की बदलती सदस्यता के बीच एक कड़ी होता है।

महासचिव सदन का एक स्थायी अधिकारी होता है और उसका चयन और उसकी नियुक्ति सभापति द्वारा उन व्यक्तियों में से की जाती है जिन्हें किसी न किसी हैसियत से संसदीय कार्यों के निपटारे का अनुभव रहा हो। अग्रता अधिपत्र में, वह भारत सरकार के समरूपी अधिकारियों के लिए यथा-विहित दर्जा धारण करता है।[302] महासचिव अपने कृत्यों के लिए केवल सभापति के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह है। वह राज्य सभा के सदन में सभापति के आसन के नीचे पहले आसन पर बैठता है और वह परामर्श और सलाह के लिए तथा प्रक्रिया संबंधी किसी संदेह या किसी नियम की व्याख्या के लिए निरन्तर उपलब्ध रहता है क्योंकि उसके पास संसदीय प्रक्रियाओं, प्रथाओं और पूर्व निर्णयों का अनुभव और ज्ञान होता है।

महासचिव के कृत्य दोहरे होते हैं: संसदीय और प्रशासनिक। पहला कृत्य अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। संसदीय कार्य से संबंधित, दिवस का सर्वाधिक निर्णायक समय, मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे सदन की बैठक से पहले महासचिव की सभापति के साथ दैनिक भेंट से आरंभ होता है। सदस्यों से प्राप्त अविलम्बनीय लोक महत्त्व के मामलों की अनेकानेक सूचनाओं पर चर्चा की जाती है और सभापति के कक्ष में उनका शीघ्र निपटारा किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर महासचिव सदन में भी अपनी सलाह सुझावों के साथ पीठासीन अधिकारी के लिए आसानी से उपलब्ध रहता है। महासचिव की सलाह दलीय संबंधों का विचार किए बिना सभी सदस्यों के लिए उपलब्ध होती है। मांगे जाने पर सलाह वस्तुनिष्ठ, निष्पक्ष, पूर्ण और निष्कपट होती है।

महासचिव के कुछ संसदीय कर्त्तव्यों का उल्लेख राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में किया गया है किन्तु अन्य बहुत-से कर्त्तव्य अनेक प्रथाओं और परिपाटियों पर आधारित हैं। जब एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों को सम्बोधित करने के लिए राष्ट्रपति का आगमन होता है तब राज्य सभा के सभापति, लोक सभा के अध्यक्ष, प्रधान मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री के साथ दोनों सदनों के महासचिव संसद् भवन के द्वार पर राष्ट्रपति की अगवानी करते हैं और राष्ट्रपति के साथ एक शोभा यात्रा (जुलूस) में केंद्रीय कक्ष की ओर आते हैं। इसी तरह, जब राष्ट्रपति प्रस्थान करते हैं तब भी वे शोभायात्रा में सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रपति के अभिभाषण के समापन के पश्चात् महासचिव, राष्ट्रपति द्वारा सम्यक् रूप से अधिप्रमाणित अभिभाषण के अंग्रेजी तथा हिन्दी रूपांतर की एक-एक प्रति सभा पटल पर रखता है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के प्रयोजनार्थ राज्य सभा और लोक सभा के महासचिव बारी-बारी से रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किए जाते हैं।

जब कभी सदन का सत्र बुलाया जाता है तब महासचिव, राष्ट्रपति के आह्वान आदेश के आधार पर, प्रत्येक सदस्य को सत्र में भाग लेने के लिए आह्वान-पत्र भेजता है।[303]

वह सदन के सदस्यों की नामावलि रखता है जिस पर प्रत्येक नव-निर्वाचित सदस्य को, अपना स्थान ग्रहण करने से पहले उसकी उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर करने आवश्यक हैं।[304] वह उपसभापति के निर्वाचन के लिए प्रत्येक सदस्य को तिथि की सूचना भी भेजता है और ऐसी सूचनाएं जो किसी सदस्य द्वारा इस पद के लिए प्रस्तावित नामों का उल्लेख करते हुए दी जायें, प्राप्त करता है।[305]

वह सरकारी कार्य का विन्यास ऐसे क्रम में करने के लिए, जो सभापति सदन के नेता के परामर्श से अवधारित करे[306] और सत्र के प्रत्येक दिवस के लिए कार्यावलि तैयार करने के लिए उत्तरदायी है।[307] वह

कार्यावलि, गृहीत प्रश्नों की सूचियां, प्रत्येक संसदीय समाचार, संशोधनों की सूची और ऐसी सूचना या अन्य पत्र जो नियमों के अधीन सदस्यों को उपलब्ध कराया जाना अपेक्षित हो, परिचालित करता है।[308] नियमों में यह भी उपबंध है कि सदस्यों द्वारा, प्रत्येक सूचना को, जैसे किसी प्रश्न, प्रस्ताव, संकल्प, विधेयक, संशोधन, विशेषाधिकार के प्रस्ताव की सूचना, ध्यान दिलाने या अल्पकालिक चर्चा आदि की सूचना, महासचिव को सम्बोधित करके लिखित रूप में दिया जाना आवश्यक है।[309]

जहां, संविधान के अधीन किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने या उस पर विचार करने या उसमें कोई संशोधन उपस्थित करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी या सिफारिश अपेक्षित हो वहां संबंधित मंत्री या सदस्य को राष्ट्रपति की मंजूरी अथवा सिफारिश की संसूचना महासचिव को लिखित रूप में देनी पड़ती है।[310]

महासचिव राज्य सभा से लोक सभा को भेजे जाने वाले संदेशों पर हस्ताक्षर करता है और यदि सदन का सत्र चल रहा हो तो वह लोक सभा से प्राप्त संदेशों की सूचनाएं सदन को देता है और ऐसे संदेशों के माध्यम से प्राप्त विधेयकों की प्रतियां सदन के पटल पर भी रखता है, अथवा यदि सदन का सत्र न चल रहा हो, तो ऐसे संदेशों को संसदीय समाचार के माध्यम से सदस्यों को प्रेषित करता है। दूसरी स्थिति में, ऐसे संदेशों के माध्यम से प्राप्त विधेयकों की प्रतियों को वह, सदन की पुन: बैठक होने पर, सदन के पटल पर रखता है।[311] महासचिव, लोक सभा को प्रेषित अथवा लौटाये जाने वाले सभी विधेयकों को प्रमाणित भी करता है। अत्यावश्यकता की स्थिति में वह सभापति की अनुपस्थिति में विधेयकों को स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने से पहले, उन्हें अधिप्रमाणित करता है[312] और उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने अथवा उसके द्वारा लौटाए जाने के पश्चात् उन्हें सदन के पटल पर रखता है।[313]

महासचिव सरकार के त्याग-पत्र के संबंध में प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति के बीच हुए पत्र-व्यवहार की प्रतियां भी सदन के पटल पर रखता है।

> महासचिव ने 7 मार्च, 1991 को सरकार के त्याग-पत्र के संबंध में प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति के बीच हुए पत्र-व्यवहार की प्रतियां सदन के पटल पर रखी थीं। इससे पहले भी 16 जुलाई, 1979 को ऐसे पत्र-व्यवहार की प्रतियां सदन के पटल पर रखने के लिए महासचिव को बुलाया गया था किन्तु वह व्यवधान के कारण ऐसा नहीं कर सका था।[314]

महासचिव सदन को सम्बोधित या सदन के लिए आशयित याचिकाओं, दस्तावेजों और पत्रों को प्राप्त करता है और उसके द्वारा प्राप्त और सभापति द्वारा गृहीत ऐसी किन्हीं याचिकाओं, आदि की सूचना सदन को देता है।[315] यदि कोई सदस्य कोई याचिका प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे इसकी अग्रिम सूचना महासचिव को देनी पड़ती है।[316] सदन या सदन की किसी समिति और सचिवालय के सभी अभिलेख, दस्तावेज और पत्रादि उसकी अभिरक्षा के अन्तर्गत होते हैं और वह, सभापति की अनुमति के बिना ऐसे किसी पत्रादि को संसद् भवन से बाहर ले जाने की अनुमति नहीं देता है।

यदि कोई मंत्री किसी तारांकित या अतारांकित या अल्प-सूचना या अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में अथवा किसी वाद-विवाद में उसके द्वारा दी गई सूचना में किसी अशुद्धि को ठीक करना चाहता है तो उसे उक्त अशुद्धि को ठीक करने संबंधी अपने आशय की सूचना, इस संबंध में विवरण की एक प्रति के साथ, महासचिव को देनी पड़ती है।

किसी सदस्य द्वारा सदन में अपने स्थान से त्याग-पत्र दिए जाने की स्थिति में या उस स्थिति में जहां सदन द्वारा कोई स्थान रिक्त घोषित कर दिया जाये, महासचिव इसकी सूचना राजपत्र में प्रकाशित करवाता है

और इस प्रकार हुई रिक्ति को भरने के लिए कदम उठाने हेतु अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को प्रेषित करता है।[317] महासचिव के नाम से जारी दर्शक-कार्डों पर दर्शक दीर्घाओं में प्रवेश प्राप्त करते हैं। इसी तरह, सदस्यों और उनकी पत्नियों या पतियों को पहचान पत्र-सह-रेलवे पास भी महासचिव के नाम से ही जारी किए जाते हैं।

राज्य सभा का महासचिव होने के नाते वह सभी संसदीय समितियों के महासचिव के रूप में भी कार्य करता है और वह इन समितियों की बैठकों में स्वयं उपस्थित हो सकता है या अपने अधिकारियों को उपस्थित होने के लिए कह सकता है। किसी विधेयक संबंधी प्रवर समिति या संयुक्त समिति के मामले में, यदि समिति का अध्यक्ष सुगमता से उपलब्ध नहीं है तो वह विधेयक के प्रभारी मंत्री के परामर्श से समिति की बैठक नियत करता है।[318] जब किसी साक्षी का साक्ष्य लेना आवश्यक समझा जाता है तब महासचिव सदन अथवा सदन की किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए उसे आह्वान पत्र (सम्मन) जारी करता है।[319] यदि कोई संसदीय समिति अपना प्रतिवेदन पूरा कर लेती है और इसी बीच लोक सभा का विघटन हो जाता है तो राज्य सभा का महासचिव उस प्रतिवेदन को सबसे पहला अवसर मिलते ही सदन के पटल पर रखता है। यह बात उस समिति के प्रतिवेदन के मामले में भी लागू होती है जो राज्य सभा के सभापति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् अस्तित्व में नहीं रहती है।[320]

> महासचिव ने लोक लेखा समिति के 67वें से 72वें प्रतिवेदन और लोक उपक्रम समिति के 35वें से 40वें प्रतिवेदन जो उनके अध्यक्षों द्वारा, 3 मार्च, 1967 को तीसरी लोक सभा के विघटन से पहले लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किए गये थे, की एक-एक प्रति, लोक सभा सचिवालय से प्राप्त रूप में, सदन के पटल पर रखी थी। उन्होंने लोक लेखा समिति (1974-75) के 142वें, 165वें, 172वें, 173वें और 176वें प्रतिवेदनों को भी सभा पटल पर रखा। इसी तरह, महासचिव ने लोक उपक्रम समिति के 98वें से 101वें प्रतिवेदन और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के 59वें और 60वें प्रतिवेदन, जो उनके अध्यक्षों द्वारा, 31 दिसम्बर, 1984 को सातवीं लोक सभा के विघटन से पहले लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किए गये थे, की एक-एक प्रति लोक सभा सचिवालय से प्राप्त रूप में, सदन के पटल पर रखी थी।[321]

> भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 8(2) के अधीन महासचिव ने राज्य सभा के सभापति द्वारा सामान्य प्रयोजन समिति के निदेशानुसार बनाए गए राज्य सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 की एक प्रति (अंग्रेजी और हिंदी में) सभा पटल पर रखी।[322]

सदन की बैठक प्रारंभ होने के नियत समय पर, लम्बे समय तक गणपूर्ति की घंटी बजाए जाने के पश्चात् भी गणपूर्ति न होने की अवस्था में महासचिव इस मामले को पीठासीन अधिकारी के ध्यान में लाता है और पीठासीन अधिकारी के आदेश से सदन में उपस्थित सदस्यों को इस बात की सूचना देता है कि सदन की बैठक आगे किस समय होगी।

> शुक्रवार, 8 दिसम्बर, 1995 को, मध्याह्न भोजनावकाश के पश्चात्, लम्बे समय तक गणपूर्ति की घंटी बजाये जाने के पश्चात् भी जब गणपूर्ति नहीं हुई तब महासचिव ने घोषणा की कि चूंकि गणपूर्ति नहीं है, इसलिए उपसभापति ने निदेश दिया है कि सभा सोमवार, 11 दिसम्बर, 1995 को म० पू० 11.00 बजे समवेत होगी।[323]

महासचिव, सदन की प्रत्येक बैठक में, सदन की कार्यवाही का पूर्ण प्रतिवेदन तैयार करवाता है और उसे उस रूप में और उस रीति से प्रकाशित करवाता है, जैसा सभापति समय-समय पर निदेश दे।[324]

जब किसी विषय पर विभाजन होता है तब महासचिव विभाजन की प्रक्रिया को चालू करता है और यदि सभापति निदेश दे तो वह विभाजन की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है और सभापति के समक्ष ''हां'' वाले और ''ना'' वाले मतों का योग प्रस्तुत करता है।[325]

महासचिव, राज्य सभा सचिवालय का, जो सभापति के समग्र निदेशों के अन्तर्गत कार्य करता है, प्रमुख होता है। सदन के सचिवालय के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में महासचिव सभापति में निहित शक्तियों का प्रयोग करता है जिनमें विभिन्न श्रेणियों के पदों की संख्या, भर्ती की विधि और उनकी अर्हताओं का निर्धारण भी सम्मिलित है। वह सचिवालय के कतिपय वर्गों के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए नियुक्ति, दण्ड और अपील प्राधिकारी है। वह वित्तीय शक्तियों का प्रयोग करता है और राज्य सभा और उसके सचिवालय से संबंधित बजट प्रस्तावों पर पहल करता है। वह राज्य सभा और उसके सचिवालय की अनुदान मांगों के अधीन, व्यय हेतु सदन द्वारा मंजूर धन का मुख्य लेखा प्राधिकारी होता है और वह इस दायित्त्व का निर्वहन वेतन और लेखा अधिकारी की सहायता से करता है जो उससे सीधा संबद्ध होकर कार्य करता है।

वह सदन के कार्य अथवा ऐसे मामले के संबंध में, जिसके सदन के समक्ष उठने की संभावना हो, भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों तथा सदस्यों के साथ सीधे पत्र-व्यवहार कर सकता है। महासचिव राज्य सभा में द्विवार्षिक रूप से नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों के लिए विषय-बोध पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(क)(1) के अधीन महासचिव को एक ऐसे प्राधिकारी के रूप में मान्यता दी गई है जो राज्य सभा के लिए किसी निर्वाचन के संबंध में भ्रष्ट आचरण के बारे में याचिकाएं ग्रहण कर सकता है।[326]

चाहे महासचिव सदन में अपने स्थान पर बैठा हो, समितियों की सहायता कर रहा हो या सदन की दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही का निपटारा कर रहा हो, वह उन सदस्यों के लिए सुपरिचित हो जाता है जो अपनी दलगत संबद्धताओं का विचार किए बिना विधि और प्रक्रिया के मामलों में सलाह लेने के लिए उसके पास आते हैं। वह विभिन्न धारणाओं वाले सदस्यों के बीच रहने के बावजूद भी अपने प्रशिक्षण की वजह से अनासक्त रहता है। इस अनासक्ति की वजह से उसे सभी सदस्यों का विश्वास जीतने में सहायता मिलती है। महासचिव द्वारा सम्पादित कृत्य कठिन और नाजुक किस्म के होने की वजह से उसके कार्य को सार्वजनिक मान्यता मिल गई है और सभापति द्वारा और सदन में सभी राजनीतिक गुटों द्वारा उसके कार्य की सराहना की गई है। इन सभी ने महासचिव की इस बात के लिए सराहना की है कि वह हर दिन उन्हें सौंपे जाने वाले कठिन कार्य को कभी-कभी जटिल परिस्थितियों में भी इस तरह से संपन्न करता है जिससे संसदीय संस्था के प्रति उसकी निष्ठा और समर्पण की महान भावना परिलक्षित होती है। गुमनामी और सौम्यतापूर्ण व्यवहार महासचिव के पद की विशिष्टता है। चौसर ने ऑक्सफोर्ड के एक अधिकारी के बारे में जो वर्णन किया वह महासचिव पर पूरी तरह से लागू होता है। ''आवश्यकता से अधिक वह एक भी शब्द नहीं बोला इस पर भी वह औपचारिक और विनयशील रहा। अपनी बात कहने में वह संक्षिप्त, सटीक और उदात्त रहा। ...वह अपने स्थान पर मौन बैठा रहा।'' अपनी असाधारण योग्यता, समर्पित सेवा और हर स्थिति में विनम्रतापूर्ण व्यवहार की वजह से महासचिव सदन में अपना सम्मानजनक स्थान बना लेता है।

> राज्य सभा के प्रथम गठन की तिथि और इसकी प्रथम बैठक की तिथि (अप्रैल-मई, 1952) के बीच प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रधान निजी सचिव, श्री बी॰ एन॰ कौल को राज्य सभा के सचिव के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया था।[327]

तत्पश्चात्, निम्नलिखित व्यक्ति राज्य सभा के सचिव/महासचिव रहे हैं:

> **श्री एस॰ एन॰ मुखर्जी** (13.5.1952–8.10.1963), इससे पहले वह संविधान सभा में संविधान के मुख्य प्रारूपकार थे। पद पर रहते हुए उनकी मृत्यु पर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते समय उनके कार्यों की अत्यंत सराहना की गई थी।[328]

श्री बी॰ एन॰ बनर्जी (9.10.1963–31.3.1976), राज्य सभा सचिवालय में कार्यभार ग्रहण करने से पहले वह लंदन में भारतीय उच्चायुक्त के विधिक सलाहकार थे। महासचिव के पद से निवृत्त होने पर, राष्ट्रपति द्वारा उन्हें राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित किया गया था।[329]

श्री एस॰ एस॰ भालेराव (1.4.1976–30.4.1981), इससे पहले वह महाराष्ट्र विधान सभा के सचिव रहे थे। महासचिव के पद से निवृत्त होने पर सदन में उनकी प्रशंसा में उद्‌गार व्यक्त किए गये।[330]

श्री सुदर्शन अग्रवाल (1.5.1981–30.6.1993), न्यायिक सेवा के थे और राज्य सभा सचिवालय में कार्यभार ग्रहण करने से पहले उन्होंने जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्य किया था। महासचिव के पद से निवृत्ति के समय सदन में जब उनकी प्रशंसा में उद्‌गार व्यक्त किए जा रहे थे तब एक विशेष सम्मान के रूप में उन्हें राज्य सभा कक्ष में 'स्पेशल बॉक्स' में बिठाया गया था।[331]

श्रीमती वी॰ एस॰ रमा देवी (1.7.1993–25.7.1997), भारतीय विधिक सेवा से थीं। महासचिव के रूप में नियुक्ति से पहले उन्होंने विभिन्न न्यायिक और अन्य पदों पर कार्य किया था, जैसे केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, सीमा-शुल्क और स्वर्ण नियंत्रण अधिकरण की न्यायिक सदस्य; राष्ट्रीय महिला आयोग की अवैतनिक सलाहकार; विधि आयोग की सदस्य-सचिव; भारत सरकार (विधायी विभाग) की सचिव और थोड़े समय के लिए मुख्य निर्वाचन आयुक्त। सदन ने उनकी नियुक्ति के अवसर पर उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए थे।[332]

श्री एस॰ एस॰ सोहनी (25.7.1997–2.10.1997) ने महासचिव के पद पर स्थानापन्न रूप से कार्य किया और राज्य सभा सचिवालय में अपर सचिव का पद धारित किया। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा के थे और 22 फरवरी, 1992 से स्थायी आमेलन के पश्चात् इस सचिवालय में उन्होंने अपर सचिव के रूप में पद भार संभाला।

श्री रमेश चन्द्र त्रिपाठी (3.10.1997–31.08.2002) ने 1958 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के रूप में अपना कैरियर शुरू किया और 1964 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए और राज्य सभा के महासचिव के रूप में अपनी नियुक्ति से पहले उन्होंने भारत सरकार, संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव; सलाहकार (शिक्षा), योजना आयोग, नई दिल्ली; प्रधान सचिव, ऊर्जा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार; प्रधान सचिव और महानिदेशक, लोक उद्यम विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार; संयुक्त सचिव, संस्कृति विभाग, भारत सरकार; महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण; आदि जैसे विभिन्न पद धारित किए।

डा॰ योगेन्द्र नारायण (1.9.2002 से अभी तक), 1965 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए और राज्य सभा के महासचिव के रूप में अपनी नियुक्ति से पहले उन्होंने मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार; भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय के सचिव; आदि जैसे विभिन्न पद धारित किए।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 89
2. अनुच्छेद 65(1)
3. अनुच्छेद 65(2)
4. अनुच्छेद 62(2)
5. डा॰ राजेन्द्र प्रसाद–कॉरेसपोन्डेंस एंड सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स, लेखक: वाल्मीकि चौधरी, वोल्यूम 21, पृष्ठ 500-01
6. संसदीय समाचार (2), 24.3.1977
7. -वही- 11.10.1982, 16.10.1982, 18.10.1982, 20.10.1982 और 30.10.1982
8. अनुच्छेद 65(3)
9. अनुच्छेद 64
10. अनुच्छेद 66(1)
11. संविधान (ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 1961, उद्देश्यों और कारणों का कथन

12. अनुच्छेद 66(2)
13. अनुच्छेद 66(3)
14. अनुच्छेद 66(4)
15. –वही– स्पष्टीकरण
16. राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 4(1)
17. –वही– धारा 4(3)
18. –वही– धारा 4(4)
19. –वही– धारा 5ख(1) (ख)
20. –वही– धारा 5ग
21. –वही– धारा 5ख (5)
22. अनुच्छेद 67
23. अनुच्छेद 71(1)
24. अनुच्छेद 71(2)
25. राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 14क
26. –वही– धारा 18
27. अनुच्छेद 71(4)
28. राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 19
29. अनुच्छेद 64
30. अनुच्छेद 112(3)
31. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.4.1987, कालम 174
32. नियम 221
33. नियम 21
34. नियम 222
35. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.4.1964, कालम 51-52 और 24.4.1964, कालम 358-59
36. –वही– 9.5.1974, कालम 121
37. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.11.1987, कालम 244
38. –वही– 19.5.1952, कालम 50-51
39. पार्लियामेंटरी प्रिविलेजेज़–डाइजेस्ट ऑफ केसेज़ (1950-85), पृष्ठ 745-46
40. –वही– पृष्ठ 747-48
41. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.11.1983, कालम 415–18 और फाइल सं॰ 35/17/83-एल
42. अनुच्छेद 100(1)
43. अनुच्छेद 92(1)
44. अनुच्छेद 92(2)
45. अनुच्छेद 100(4)

46. अनुच्छेद 101(3), परंतुक
47. दसवीं अनुसूची पैरा 6(1)
48. –वही– पैरा 8(1)
49. –वही– पैरा 8(3)
50. अनुच्छेद 120(1)
51. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.7.1952, कालम 1331
52. –वही– 7.5.1981, कालम 282–87
53. संसदीय समाचार (2), 24.11.1995
54. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 78–81
55. संसदीय समाचार (1), 31.8.1978
56. ब्यौरे के लिए अध्याय-6 **देखिए**
57. नियम 187, 203
58. नियम 30(2)
59. नियम 217(2)
60. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 137–339
61. नियम 240
62. नियम 261
63. नियम 255
64. नियम 256(1)
65. नियम 257
66. ब्यौरे के लिए अध्याय-16 **देखिए**
67. नियम 108; राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1954, कालम 5291
68. नियम 135
69. नियम 266
70. अनुच्छेद 98
71. नियम 222क
72. नियम 222ख
73. संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9(4)
74. न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968, धारा 3(2)
75. –वही– धारा 7(5)
76. प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978, धारा 5(2)
77. ब्यौरे के लिए राज्य सभा की समितियां और ऐसी अन्य संसदीय समितियां तथा निकाय, जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व है, शीर्षकयुक्त पुस्तिका **देखिए**
78. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1978, कालम 446-47; 17.8.1978, कालम 165-66; 24.8.1978, कालम 190-91; 29.8.1978, कालम 6-7

79. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.3.1987, कालम 36-37 और 6.5.1987, कालम 279–84
80. -वही- 2.8.1995 और संसदीय समाचार (1), 9.8.1995
81. अनुच्छेद 89(2)
82. नियम 7(1)
83. नियम 7(2)
84. -वही- परंतुक
85. उदाहरण के लिए **देखिए,** संसदीय समाचार (2), 6.7.1992
86. नियम 7(3) और (4)
87. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1969, कालम 4517–19
88. -वही- 29.7.1980, कालम 139–53
89. -वही- 30.7.1980, कालम 165-66
90. अनुच्छेद 90(क)
91. अनुच्छेद 90(ख)
92. अनुच्छेद 90(ग)
93. अनुच्छेद 112(3) (ख)
94. फा॰ सं॰ 1/32/2/99-कैब॰
95. अनुच्छेद 91(1)
96. अनुच्छेद 91(2)
97. नियम 9
98. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.1.1991
99. -वही- 11.3.1991
100. संसद् के सदन (संयुक्त बैठकें और संवाद) नियम, नियम 5
101. अनुच्छेद 100(1)
102. संसदीय समाचार (2), 20.10.1984 और 1.3.1985
103. नियम 30(1)
104. नियम 217(1)
105. उदाहरण के लिए **देखिए,** संसदीय समाचार (2), 6.6.1994
106. नियम 30(4) और 217(5)
107. नियम समिति का तीसरा प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 3 और 5
108. उदाहरण के लिए नियम 73(1) का परंतुक **देखिए**
109. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994, धारा 4
110. अनुच्छेद 91(1)
111. संसदीय समाचार (2), 24.3.1977
112. संसदीय समाचार (1), 28.3.1977
113. संसदीय समाचार (2), 28.3.1977

114. संसदीय समाचार (1), 30.3.1977
115. बैठकों की अस्थायी सारणी (पूर्वाह्न)
116. नियम 8(1)
117. नियम समिति का तीसरा प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 1-2
118. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 16.5.1952, कालम 45-46
119. -वही- 16.5.1952
120. संसदीय समाचार (2), 7.7.1992 और 9.7.1992
121. -वही- 22.2.1990, 2.5.1990, 17.7.1990. 27.4.1992, 7.7.1992 और 1.12.1992

121क. संसदीय समाचार (1), 27.2.1997 और 1.8.1997

122. ब्यौरे के लिए अध्याय-11 **देखिए**
123. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.9.1981, कालम 507-08
124. नियम 9
125. अनुच्छेद 100(1)
126. नियम 229(2)
127. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1991, कालम 177—81
128. नियम 8(2)
129. संसदीय समाचार (2), 15.9.1994
130. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1969, कालम 6536
131. -वही- 19.5.1969, कालम 3723
132. अनुच्छेद 91(2)
133. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.3.1987, कालम 293
134. नियम 9
135. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1967, कालम 1797
136. -वही- 3.4.1967, कालम 1934—36
137. -वही- 2.12.1968, कालम 2261—62
138. -वही- 3.12.1968, कालम 2425—27
139. -वही- 30.6.1980, कालम 175
140. -वही- 1.7.1980, कालम 125-26
141. -वही- 22.12.1980, कालम 461
142. -वही- 23.12.1980, कालम 1—5, 34-35
143. -वही- कालम 4
144. -वही- 2.7.1980, कालम 195
145. -वही- 3.7.1980, कालम 1—4
146. -वही- 25.8.1981, कालम 345-46
147. -वही- 26.8.1981, कालम 145—49

148. विभिन्न समितियों संबंधी नियमों को **देखिए**
149. संसदीय समाचार (1), 28.7.1989
150. उदाहरण के लिए नियम 207(2) **देखिए**
151. नियम 90(5)
152. नियम 90(7)
153. नियम 211
154. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1981, 17.9.1981 और 26.3.1982
155. आवास तथा टेलीफोन सुविधाएं (संसद् सदस्य) नियम, 1956, नियम 4(2)
156. संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 2(घ), धारा 3 के साथ पठित
157. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, दूसरा संस्करण 1970, पृष्ठ 73-74
158. 'मे', पृष्ठ 201 में ग्लैडस्टोन द्वारा उद्धृत
159. 'गवर्नमेंट एंड पार्लियामेंट', लेखक: हरबर्ट मोरीसन, पृष्ठ 117-18
160. 'ऐन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट', पृष्ठ 427
161. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, दूसरा संस्करण, 1970, पृष्ठ 73—79
162. रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑफ प्रिजाइडिंग ऑफिसर्स (पागे कमिटी), पैरा 47
163. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 21.5.1952, कालम 245
164. -वही- 18.2.1953, कालम 615
165. -वही- 24.1.1952, कालम 36-37
166. -वही- 3.12.1952, कालम 802
167. -वही- 6.12.1952, कालम 988-89
168. -वही- 13.5.1952, कालम 2; 19.4.1954, कालम 3303; राज्य सभा वाद-विवाद, 29.4.1968, कालम 1 और 17.8.1981, कालम 1-2
169. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.5.1996, कालम 1
170. -वही- 23.7.2002, कालम 1
171. नियम 23
172. नियम 14 और 20
173. नियम 24
174. नियम 172
175. नियम 177
176. नियम 186(2)
177. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 1.9.1972 और संसदीय समाचार (2), 10.11.1972
178. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.6.1980, कालम 1-2
179. -वही- 7.3.1961, 1.3.1963, 29.5.1964, 14.2.1966, 5.5.1969, 28.2.1977, 17.7.1986 और 27.7.1987
180. -वही- 29.5.1964, 5.5.1969 और 28.2.1977
181. -वही- 27.7.1970, कालम 157—60

182. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.7.1966, 16.11.1966 और 14.12.1967

183. नियम समिति (तीसरा प्रतिवेदन) की सिफारिश पर वर्तमान नियम 191 को, जो पुराने नियम 167 के समान था, 1981 में पुन: संशोधित किया गया ताकि समिति को प्रश्न सौंपने का प्रस्ताव उस सदस्य द्वारा, जिसने मामले को उठाया है, या किसी अन्य सदस्य द्वारा उपस्थित किया जा सके। दूसरे शब्दों में, अब नियम में सदन के नेता को प्रश्न सौंपे जाने के उपबंध का लोप कर दिया गया है

184. विशेषाधिकार समिति का सातवां, नौवां, दसवां और तेरहवां प्रतिवेदन **देखिए**

185. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.12.1967, कालम 5236—56

186. -वही- 18.3.1982, कालम 202—33

187. -वही- 21.11.1983, कालम 415—18

188. नियम 215 (1)

189. संसदीय समाचार (1), 21.12.2000

190. अध्याय-15 **देखिए**

191. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 19.5.1952, कालम 83-84

192. राज्य सभा वाद-विवाद,, 3.4.1970, कालम 58—118

193. -वही- 14.5.1970, कालम 200

194. -वही- 2.12.1992, कालम 3

195. -वही- 2.8.1982, कालम 145—157

196. -वही- 7.5.1985, कालम 171-72

197. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.4.1981

198. -वही- 20.8.1979 और 6.3.1991; 14.5.1985, 20.12.1989 और 4.9.1991 की राज्य सभा वाद-विवाद भी **देखिए**

199. -वही- 15.4.1999, कालम 1-2

200. -वही- 15.3.1965, कालम 3443

201. -वही- 3.5.1966, कालम 62—80

202. -वही- 31.7.1987, कालम 299—301

203. -वही- 22.2.1983, कालम 392—94

204. -वही- 16.12.1992, कालम 1048—50

205. -वही- 2.3.2001, पृष्ठ 194

206. -वही- 18.3.2002, पृष्ठ 279

207. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 24.11.1952, कालम 36-37

208. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1959, कालम 65

209. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 1.5.1952, कालम 4625

210. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.4.1978, कालम 141—49

211. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, पृष्ठ 79

212. कैबिनेट गवर्नमेंट, लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, अध्याय-15

213. -वही-

214. 'कैबिनेट गवर्नमेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, अध्याय-15, पृष्ठ 472
215. -वही- पृष्ठ 499
216. -वही- पृष्ठ 500
217. सिलेक्ट कमेटी ऑन प्रोसीजर, हाउस ऑफ कॉमन्स, 1931 का 161, प्रधान मंत्री रैमजे मेकडोनल्ड का साक्ष्य
218. 'ब्रिटिश गवर्नमेंट सिन्स 1918' कैम्पियन (संपादित), पृष्ठ 20-21
219. 'पार्लियामेंट: ए सर्वे', कैम्पियन (संपादित), पृष्ठ 29-31
220. 'कैबिनेट गवर्नमेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, पृष्ठ 500
221. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिग्स, पृष्ठ 84
222. राज्य सभा डिबेट्स, 18.12.1969, कालम 4775-97
223. -वही- 17.11.1969, कालम 107—24
224. -वही- उदाहरण के लिए 24.3.1971, कालम 6; 31.3.1971, कालम 131 और 1.4.1971, कालम 205
225. संसद् में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 धारा 2
226. -वही- धारा 2 का स्पष्टीकरण
227. -वही-
228. संसदीय समाचार (1), 30.3.1977
229. फाइल सं॰ 19/98-टी
230. संसदीय समाचार (2), 18.2.1978
231. संसदीय समाचार (1), 24.2.1978; संसदीय समाचार (2) 3.3.1978 भी **देखिए**
232. संसदीय समाचार (1), 23.3.1978; संसदीय समाचार (1) 8.3.1978 भी **देखिए**
233. संसदीय समाचार (2), 22.4.1978
234. फाइल सं॰ 19/80-टी
235. संसदीय समाचार (2), 22.1.1980
236. -वही- 29.4.1980
237. -वही- 19.12.1989
238. -वही- 3.1.1991
239. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.12.1990, कालम 7—53
240. -वही- 2.1.1991, कालम 835—43
241. फाइल सं॰ 12/91/टी; संसदीय समाचार (2), 1.7.1991; राज्य सभा वाद-विवाद, 1.7.1991
242. संसदीय समाचार (1), 24.7.1991
243. फाइल सं॰ 12/92/टी; संसदीय समाचार (2) 1.7.1992
244. -वही- 7.7.1992
245. अनुच्छेद 74(1)
246. अनुच्छेद 75(1)
247. मंत्री वेतन तथा भत्ता अधिनियम, 1952, धारा 2
248. अनुच्छेद 75(2)

249. अनुच्छेद 75(3)
250. लोक सभा नियम, 56–63, 198, 199
251. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1967, कालम 1554
252. -वही- 20.12.1989
253. -वही- 25.1.1980, कालम 59-60
254. -वही- 28.12.1990, कालम 1—17
255. अनुच्छेद 75(5)
256. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 58—118
257. -वही- 4.4.1970, कालम 53—67
258. -वही- 27.4.1982, कालम 3—5
259. -वही- 5.5.1982, कालम 193—95
260. -वही- 27.4.1982, कालम 5
261. मंत्रिमंडल सचिवालय कार्यालय ज्ञापन सं॰ 55/1/1/93-कैब. (i), 18.1.1993 और 9.7.1993
262. -वही- 1.9.1993
263. अनुच्छेद 88
264. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.5.1963, कालम 1828; राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1980, कालम 207—15 भी **देखिए**
265. -वही- 25.1.1980, कालम 52—56
266. -वही- 26.11.1954, कालम 41-42
267. -वही- 1.12.1995
268. -वही- 28.3.1980, कालम 160
269. -वही- 18.11.1985, कालम 356-57
270. -वही- 31.7.1986, कालम 131
271. अध्याय 7 और 11 **देखिए**
272. अनुच्छेद 88
273. अनुच्छेद 105(4)
274. अनुच्छेद 124(3)
275. अनुच्छेद 76(1)
276. अनुच्छेद 76(4)
277. उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 139क
278. अनुच्छेद 76(2); विधि अधिकारी (नियुक्ति और सेवा की शर्तें) नियम, 1963
279. अनुच्छेद 76(3)
280. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1986, कालम 228
281. -वही- 29.4.1963, कालम 1210—14
282. -वही- 4.8.1963, कालम 268—70
283. -वही- 5.8.1993, कालम 276-77; कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 5.8.1993

284. संसदीय समाचार (2), 10.5.1988

285. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.5.1988, कालम 339—64

286. -वही- 19.12.1988, कालम 8—15

287. -वही- 20.12.1988, कालम 153-54

288. फाइल सं॰ 1/67/88-बी

289. -वही-

290. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.1.1991, कालम 835—43

291. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का दसवां प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 4 और परिशिष्ट-2

292. विशेषाधिकार समिति का 25वां प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 2 और परिशिष्ट-4

293. विशेषाधिकार समिति का 27वां प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 4 और परिशिष्ट-2

294. विशेषाधिकार समिति के 19वें प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, पृष्ठ 16 और 17

295. न्यायालय अवमान विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन (अंग्रेजी), कार्यवृत्त, 12.10.1969

296. दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, 15.10.1971

297. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 58—118

298. -वही- 4.4.1989, कालम 52-53

299. 'ए पार्लियामेंटरी डिक्शनरी', लेखक: अब्राहम एंड हॉट्रि

300. 'दि पार्टी सिस्टम इन ग्रेट ब्रिटेन', लेखक: आइवर बुलमर टॉमस, पृष्ठ 110

301. नवम्बर, 1973 तक उसका पदनाम 'सचिव' होता था; पदनाम में परिवर्तन की घोषणा के लिए राज्य सभा वाद-विवाद, 15.11.1973, कालम 153-54 **देखिए**

302. महासचिव को अग्रता अधिपत्र (वारंट ऑफ प्रिसीडेन्स) के अनुच्छेद 23 में रखा गया है

303. नियम 3

304. नियम 6

305. नियम 7

306. नियम 23

307. नियम 29

308. नियम 95(2) और 160(3)

309. नियम 223

310. नियम 63 और 98

311. संसदीय समाचार (2), 21.5.1993 और 18.5.1994; संसदीय समाचार (1), 26.7.1993 और 13.6.1994

312. नियम 135

313. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.3.1991 और 17.9.1991; भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 राष्ट्रपति द्वारा लौटाया गया और 12.3.1990 को सभा पटल पर रखा गया

314. संसदीय समाचार (1), 7.3.1991 और राज्य सभा वाद-विवाद, 16.7.1979, कालम 3

315. नियम 145

316. नियम 144

317. नियम 213 (6)

318. नियम 79

319. नियम 84(2), 196(2), 208(2) (2) और 212ङ (2) 212ठ (2)

320. सभापति का निदेश, संसदीय समाचार (2), 25.1.1996; निदेश के अनुसरण में रखे गए प्रतिवेदनों के लिए संसदीय समाचार (1), 27.8.1986 **देखिए**

321. संसदीय समाचार (1), 20.3.1967, 28.3.1967, 29.3.1967, 7.4.1967, 6.5.1978, 8.1.1985 और 22.1.1985

322. –वही– 16.12.1985; सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 12.12.1985

323. –वही– 8.12.1995

324. नियम 260

325. नियम 253(2) और 254(2)

326. अधिसूचना सं॰ का॰ आ॰ 367 (अ), 25.5.1976 (मैनुअल ऑफ इलेक्शन लॉ, खण्ड 1, पृष्ठ 166)

327. भालेराव, एस॰ एस॰, ''द सैकण्ड चैम्बर'', पृष्ठ 408—434

328. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.11.1963, कालम 84—86

329. –वही– 2.4.1976, कालम 75—83

330. –वही– 4.5.1981, कालम 205—17

331. –वही– 26.7.1993, कालम 153—78

332. –वही–